संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
॥ ऋषि प्रसाद ॥
वर्ष : ११
अंक : ९९
मार्च २००१
हिन्दी
होली महोत्सव
९ मार्च २००१
पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू
जहरीले, रासायनिक रंगों से होली खेलना हानिकारक है। केसूड़े के पुष्पों से बने रंग से होली खेलना हितकारी है। इससे शरीर के सप्तरंगों व सप्तधातुओं का संतुलन बना रहता है, त्वचा की सुरक्षा होती है तथा गर्मी सहन करने की क्षमता बढ़ती है।

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : ११
अंक : ९९
९ मार्च २००१

सम्पादक : क. रा. पटेल
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) पंचवार्षिक : US $ 120
(३) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
E-Mail : ashramamd@ashram.org
Web-Site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

पर्व होली का आया...

आज भगत संग होली खेलें प्रभु गुरुदेव हमारे।
अमृतजल बरसाकर प्रभु जन्मों का मैल उतारें।
पर्व होली का आया चलो सब गुरु के द्वारे ॥
ज्ञान का अमृत घोल-घोल भर-भर पिचकारी मारें।
पाप-ताप दुःख-संकट हर भवसागर पार उतारें ॥
पर्व होली...

जगतपिता गुरुदेव हमारे जग में सबसे न्यारे।
प्रेम भरी मीठी नज़रों से सबकी ओर निहारें ॥
पर्व होली...

आज धरा पर सात रंग का बादल बना गुलाल।
ग्वाल-गोपियों के संग होली खेलें नंदगोपाल ॥
पर्व होली...

सात रंग होते हैं भगतों हर इक रंग है कच्चा।
प्रेम रंग में रँग लो मन को प्रेम रंग है पक्का ॥
पर्व होली...

बड़ा ही पावन होली का दिन रंगों का त्यौहार।
भूलके पिछले झगड़े गले लग जाओ रूठे यार ॥
पर्व होली...

जगतपिता सद्गुरु साँई मेरे बापू आसाराम।
कोटि-कोटि प्रणाम तुमको कोटि-कोटि प्रणाम !

- सावित्री सन्धु, भायंदर रोड, मुंबई ।

*

गुरु का देखो खेल निराला...

गुरु का देखो खेल निराला,
अपने ही रंग में रँग डाला।
ज्योति सत्य की ऐसी जलाई,
सभी के मन में जो है समाई ॥
देते हैं गुरु प्रसाद निराला,
गुरु का देखो खेल निराला ॥
काम-क्रोध से हमें निकाला,
तन-मन को पावन कर डाला।
जीवन में कर दिया उजाला,
गुरु का देखो खेल निराला ॥
हरि नाम का दिया है प्याला,
बुरे कर्म को छोड़ दे बाला।
ऐसा कह कर दिया मतवाला,
गुरु का देखो खेल निराला ॥

- पप्पी कुमार शर्मा, ब्रजपुरी, दिल्ली ।

*

बीच मास जब पोस्टमैन आया...

बीच मास जब पोस्टमैन है द्वार हमारे आया।
पुलकित मन हो, लगे सुनिश्चित, 'ऋषि प्रसाद' यहाँ लाया ॥
देख 'सुभाषित सौरभ' पाया समसामयिक नज़ारा।
'गुरु-ज्ञान' की सुरसरिता की बहती निर्मल धारा ॥
'ज्ञान दीपिका' दे बापू के सत्संगों का ज्ञान।
मिले 'तत्त्वदर्शन' से हमको प्रभु-महिमा अनुमान ॥
पढ़ 'साधना प्रकाश' प्राप्त हो जीवनमंत्र उदार।
पढ़ा 'पर्व मांगल्य' तो मिला उत्सव पर्वाधार ॥
'भागवत अमृत' हमें दिखाता सत्पुरुषों की लीला।
'भक्ति भागीरथी' दर्शाती भक्ति प्रसंग रँगीला ॥
पढ़ 'प्रेरक प्रसंग' हम पाते सत्पुरुषों का साधन।
पढ़ा 'युवा जागृति संदेश' तो जीवन बनता पावन ॥
पढ़ 'विवेक दर्पण' हम चाहें करें समाज सुधार।
'सद्गुरु-सत्संग' पढ़ हम जाने सद्गुरु का उपकार ॥
मन्जु 'संतवाणी' से हटते उर से बुरे विचार।
लीलाशाहजी महाराज का जीवन 'सौरभ सार' ॥
'स्वास्थ्य संजीवनी' को पढ़ हम जानें रोगोपचार।
'एकादशी माहात्म्य' बने जीवन पथदर्शन सार ॥
'भक्तों के अनुभव' 'पत्र आपके' 'समाचार' पढ़ सारे।
बार-बार पढ़ने की उर में आस्था जगे हमारे ॥
श्रद्धा अरु विश्वास प्रेम का 'मानवेन्द्र' पी प्याला।
'ऋषि प्रसाद' पढ़ने का जीवन भर संकल्प निराला ॥

- रामनारायण मिश्र 'मानवेन्द्र'
फतेहपुर (उ. प्र.)

परम मंगल किसमें है ?

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु... हमारा संकल्प शिव संकल्प हो अर्थात् मंगलकारी संकल्प हो।

मंगलकारी संकल्प क्या है ? परम मंगलकारी परमात्मा को पाना। मनुष्य को विचार करना चाहिए कि : 'मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे जब मैं संसार को मिथ्या समझकर अपने शाश्वत् तत्त्व आत्मा में आराम पाऊँगा... हर्ष और शोक से पार रहूँगा ?'

मुस्कराकर गम का जहर, जिनको पीना आ गया।
ये हकीकत है कि जहाँ में, उनको जीना आ गया॥

आप सदैव प्रसन्न रहो। आपके हृदय में अनंत अनंत ब्रह्माण्डों का नायक परमात्मा मौजूद है और आप जरा-जरा-सी बात में परेशान हो रहे हो ? जगन्नियंता आपके साथ है और आप चुल्लू भर पानी के लिये चिल्ला रहे हो ? आपके भीतर अमृत का दरिया लहरा रहा है और आप नाली के पानी के लिये मनौतियाँ मान रहे हो ?

उठो... जागो अपनी महिमा में। कोई जीता है दुनिया के लिये तो कोई भोगों के लिये, कोई आता है आने के लिये तो कोई जाता है जाने के लिये... लेकिन भगवान का प्यारा आता भी भगवान के लिये है और जाता भी भगवान के लिये है, हँसता भी भगवान के लिये है और रोता भी भगवान के लिये है, खाता भी भगवान के लिये है और पीता भी भगवान के लिये है। जिसका लक्ष्य परमात्म-प्राप्ति हो, उसकी हर चेष्टा प्रभु के लिए हो जाती है।

संत कँवररामजी कहते हैं :

तू ही थम्भो तू ही थूणी। तू ही छपर तू ही छाँव॥

'हे प्रभु ! तू ही मेरे जीवन का खंभा है, तू ही छप्पर है और तू ही मेरे जीवन की छाया है। तू मेरे जीवन का सर्वस्व है।'

आज से आप भी अपने आत्मदेव को जीवन का सर्वस्व समझकर, संसार-स्वप्न से जागकर अपना तो कल्याण करें, अपने कुल का भी उद्धार कर लें।

जिनको आत्मदृष्टि नहीं मिली है उनके लिये आकारवाले देव की भावना की गयी है और हम जैसी भावना करते हैं वैसा ही फल भी मिलता है। आत्मज्ञान भावना का फल नहीं है, वह तो बहुत ऊँची अवस्था है। जिन्होंने उस अवस्था का अनुभव किया है, उनके नाम से मानी हुई मनौतियाँ प्रकृति पूरी करती है। उनके नाम से भक्त कुछ करते हैं तो वह फलीभूत हो जाता है। उनका नाम लेने से मन पवित्र होने लगता है।

आत्मज्ञान ऐसा पवित्र में पवित्र है, उत्तम में उत्तम है, पाने में सुगम है, धर्मयुक्त है एवं प्रत्यक्ष फल देनेवाला है। शांति प्रत्यक्ष है, आनंद प्रत्यक्ष है, माधुर्य प्रत्यक्ष है। ऐसे आत्मज्ञान को प्राप्त ब्रह्मवेत्ता महापुरुष की कृपा से ही परम मंगल होता है।

गुरुकृपा हि केवलं शिष्यस्य परं मंगलम्।

जप-तप, व्रत-अनुष्ठान एवं देवताओं के वरदान से मंगल हो सकता है लेकिन परम मंगल तो ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु की कृपा पचाने से ही संभव है।

ब्रह्मज्ञान का मार्ग बड़ा न्यारा है। आपका चित्त अपरिपक्व है तो उसमें राग-द्वेष आदि की खटाई पड़ी रहती है लेकिन गुरुकृपा से जब वह परिपक्व होता है तो उसमें मधुरता आती है। जब तक चित्त की परिपक्व अवस्था नहीं आये, तब तक आदर से साधन करना चाहिए। गुरु का दामन नहीं छोड़ना चाहिए। आत्मज्ञान के बाद भी शिष्य को गुरुदेव की शरण नहीं छोड़नी चाहिए।

'श्रीगुरुगीता' में आया है :

यावत्कल्पान्तको देहस्तावद्देवि गुरुं स्मरेत्।
गुरुलोपो न कर्त्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत्॥

'हे देवी ! देह कल्प के अंत तक रहे तब तक श्री गुरुदेव का स्मरण करना चाहिए और आत्मज्ञानी होने के बाद भी (स्वच्छन्द अर्थात् स्वरूप का छन्द मिलने पर भी) शिष्य को ब्रह्मज्ञानी गुरुदेव की शरण

नहीं छोड़नी चाहिए।'

बुद्धिमान्, पवित्रात्मा वही है जो आत्मज्ञान के लिये यत्न करता है। आत्मा-परमात्मा हमसे दूर नहीं है, उसकी प्राप्ति कठिन नहीं है। उसके लिये कहीं जाना नहीं है और कुछ पाना भी नहीं है। वह तो नित्य प्राप्त है, केवल उस आनंदस्वरूप का अनुभव करना है। वह सत्, चित् और आनंदस्वरूप है। सत्स्वरूप है कि देहादि में परिवर्तन होता है और वे नष्ट भी होते हैं लेकिन उस परमात्मा का अस्तित्व सदा रहता है। चित्स्वरूप है कि अंतःकरण में उस चेतन की अनुभूति होती है। जो सत् है, वह चेतन है और जो चेतन है, वह ज्ञानस्वरूप है। बिना ज्ञान के चेतन जड़ हो जायेगा और बिना चेतन के ज्ञान शून्य हो जायेगा। अतः जो चेतन है वही ज्ञान है, चेतन के बिना ज्ञान नहीं होता। आत्मा आनंदस्वरूप है इसीलिये थोड़ी-थोड़ी सुख की झलकें आती हैं। उस सच्चिदानंद आत्मस्वरूप में जाग जाओ तो बस, हो गया काम पूरा।

मेहनत तो आप लोग भी करते हैं और ज्ञानी भी करते हैं लेकिन ज्ञानी की मेहनत ठीक निशाने पर है इसलिये उनको शाश्वत फल मिलता है। आपकी मेहनत ठीक निशाने पर नहीं है इसलिए वह मजदूरी हो जाती है और आपको उसका नश्वर फल मिलता है। एक गाड़ी की जगह दो गाड़ी आ गयी... एक करोड़ की जगह दो करोड़ हो गये... एक की जगह दो बेटे हो गये... आखिर क्या ? जब तक परमात्मा का ज्ञान नहीं हुआ, तब तक सब कुछ मिल जाये फिर भी क्या फायदा ?

जेकर मिले त राम मिले, ब्यो सब मिल्यो त छा थ्यो ?
दुनिया में दिल जो मतलब, पूरो थियो त छा थ्यो ?

'अगर मिले तो उस आत्माराम का सुख मिले, आत्मदेव का ज्ञान मिले, आत्मदेव की स्मृति आ जाये। दूसरा जो भी मिलेगा वह कब तक टिकेगा ?'

दुःख आये तो उसको देखे, उससे दुःखी न हों और सुख आये तो उसको देखे, उसमें फँसे नहीं तो समझो आत्मदेव की स्मृति है। ऐसे ही मान मिले और उसका अहंकार न हो तथा अपमान मिले और उसका विषाद न हो तो समझो आत्मदेव की स्मृति है।

आत्मज्ञान अपना-आपा है अतः उसकी स्मृति तो आसान है। रोज उसकी स्मृति आती है। सुबह उठते हैं तो सबसे पहले मन में यही भाव उठता है कि : 'मैं हूँ।' 'मैं फलाना हूँ... मैं बी.ए. हूँ...' यह सब बाद में आता है। 'मैं हूँ' वही तो आत्मा है, परमात्मा है। 'भगवान हैं कि नहीं ?' इसमें संशय हो सकता है... 'स्वर्ग है कि नहीं ?' इसमें संशय हो सकता है लेकिन 'मैं हूँ कि नहीं ?' इसमें कोई संशय नहीं है।

जगत की वस्तुओं का ज्ञान पाना कठिन है क्योंकि हम उन्हें भूल भी जाते हैं लेकिन अपने-आपको कहाँ भूलते हैं ? गहरी नींद में कुछ नहीं रहता। फिर भी जब उठते हैं तब बोलते हैं कि : 'बड़ी गहरी नींद आयी।' लेकिन गहरी नींद को देखनेवाला, उसका आनंद लेनेवाला तो था। आनंद की झलक उसी आत्मा से मिलती है। मन बदल जाता है तो फिर आनंद की वह झलक नहीं मिलती लेकिन आत्मा तो ज्यों-का-त्यों रहता है। झलक लेने के बजाय झलक के मूल उस आनंदस्वरूप को पहचानकर उसमें टिक जायें तो आपका तो कल्याण हो ही जायेगा, जो आपके दर्शन करेगा उसका भी मंगल हो जायेगा।

परमात्मा का वह नित्य नवीन आनंद, रस एवं माधुर्य घट-घट में है। ऐसा परमात्मा जो सत्, चित् एवं आनंदस्वरूप है, वही हमारी आत्मा होकर बैठा है और आज तक हमने उसे जानने का प्रयास नहीं किया तो हम बुद्धिमान् होते हुए भी बुद्धू हैं।

भाषा, कला आदि का ज्ञान अंत में व्यर्थ हो जाता है लेकिन परमात्मा का ज्ञान एक बार भी हो जाये तो फिर सदा-सदा के लिये सब दुःखों से मुक्ति दिला देता है।

श्री रामकृष्ण परमहंस कहते थे : ''पहले सत्स्वरूप ईश्वर को जान लो फिर दुनिया का ज्ञान जानना। पहले सत्स्वरूप ईश्वर को पा लो फिर दुनिया का जो पाना है, पा लेना।''

फिर जानना क्या और पाना क्या ? प्रकृति तो आपकी दासी होकर रहेगी। सब वस्तुएँ आपके चरणों में न्यौछावर हो जायेंगी... परम मांगल्य के द्वार खुल जायेंगे।

वास्तव में 'स्व'स्थ कौन है ?

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

'श्रीमद्भगवद्गीता' में आता है :

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥

'जो निरन्तर आत्मभाव में स्थित, दुःख-सुख को समान समझनेवाला, मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रिय को एक-सा माननेवाला और अपनी निन्दा-स्तुति में भी समान भाववाला है (ऐसा पुरुष गुणातीत कहा जाता है।)' (गीता : १४.२४)

यह श्लोक बताता है कि हमारे जीवन में उपलब्धि की पराकाष्ठा है समता । यह समता तभी आती है जब हममें अभ्यासयोग हो । अभ्यास का तात्पर्य क्या है ? किसी भी चीज को बार-बार सोच-विचारकर उसमें तदाकार होना- यह अभ्यास है । ऐसा अभ्यास तो बहुत होता है लेकिन अभ्यास में अगर योग न मिले तो वह अभ्यास संसारचक्र में घुमाता है । गीताकार भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

'हे पार्थ ! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यासरूप योग से युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्त से निरंतर चिंतन करता हुआ मनुष्य परम प्रकाशरूप दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है ।' (गीता : ८.८)

अभ्यास तो सभी करते हैं... कोई रोटी बनाने का, कोई पढ़ने का तो कोई सेवा करने का अभ्यास करते हैं लेकिन जब तक अभ्यास में योग नहीं मिलता तब तक जीव संसार-भट्टी में ही पचता रहता है ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : 'हे अर्जुन ! तू ऐसा ज्ञानी बन जो सुख-दुःख और निंदा-स्तुति में सम रहता है । मिट्टी, पत्थर एवं स्वर्ण में जिसको समान भाव रहता है । उसको बाहर से तो भेद दिखता है लेकिन उसके चित्त में से सुवर्ण की आसक्ति और मिट्टी से घृणा, सुख की आसक्ति और दुःख का भय चला जाता है ।'

ऐसा पुरुष जो अपनी आत्मा में स्थित रहता है, वही स्वस्थ कहा जाता है ।

जिसको अपनी आत्मा का ज्ञान नहीं है ऐसा मनुष्य दुःख में तो दुःख से अस्वस्थ रहता ही है, सुख में भी स्वस्थ नहीं रहता है । 'सुख आये तो सदा टिका रहे एवं और ज्यादा बढ़े...' इस चिंता-चिंता में वह उस प्राप्त सुख को नहीं भोग सकता । इसलिये वह सुख में भी अस्वस्थ रहता है । लेकिन जिनको आत्मज्ञान हो चुका है ऐसे महापुरुष सुख-दुःख दोनों में स्वस्थ रहते हैं ।

जो स्वस्थ होता है उसको सुख-दुःख भयभीत नहीं कर सकते । अस्वस्थ व्यक्ति पर ही जहर का असर होता है । जो संपूर्णतः स्वस्थ है वह जहर को भी पचा लेता है । महाबली भीम को जहर दिया गया तो उनका बल बढ़ गया था । जो स्वस्थ होता है उसे संसार में दुःख-मुसीबत के कड़वे घूँट मिलते हैं तो उसकी योग्यता बढ़ती है और संसार के लोगों का प्यार मिलता है तो भी आनंद में रहता है । मीराबाई को जहर का प्याला मिला तो भी स्वस्थ रहीं और प्रेम से गिरधर के भजन गाती रही ।

सुख-दुःख में स्वस्थ रहना ही योग है । हम भगवान की मूर्ति के आगे फल-फूल रखकर पूजा करते हैं, वह तो अच्छा है लेकिन उसमें योग मिलाना चाहिए, नहीं तो वही अभ्यास सालों तक चलता रहेगा । पूजा अच्छी होगी तो मन स्वस्थ रहेगा और अच्छे से न होगी तो वह दिन बेकार लगेगा एवं मन अस्वस्थ रहेगा । क्यों ? क्योंकि सेवा-पूजा करने का अभ्यास तो है लेकिन उसमें योग नहीं है ।

साधना-अभ्यास में अगर योग मिल जाये तो साधक सिद्ध पुरुष हो जाये। फिर वह पूजा करे तो भगवान की पूजा है ही और पूजा न करे तो भी भगवान की पूजा है।

भगवान श्रीकृष्ण जो कुछ करते हैं वह योग हो जाता है क्योंकि वे सुख-दुःख में स्वस्थ हैं। कंस उनकी कितनी भी निंदा करे, उनके खिलाफ़ षड्यंत्र करे फिर भी वे भयभीत नहीं होते हैं और ग्वाल-गोपियाँ प्रेम करती हैं फिर भी उनमें आसक्त नहीं होते हैं। भगवान श्रीकृष्ण को माता यशोदा से प्रेम मिलता है और पूतना से जहर मिलता है फिर भी वे जो गति यशोदा को देते हैं वही गति पूतना को भी देते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में सब अपना ही स्वरूप है।

भगवान श्रीरामचंद्रजी को १४ वर्ष का वनवास दिलाने में जिसने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी ऐसी मंथरा से मिलने श्रीरामजी स्वयं गये और उसे राजमहल में ले आये। श्रीरामजी के आगे मेघनाथ अपनी बड़ाई हाँकता है फिर भी वे स्वस्थ हैं और रावण का भाई विभीषण उनकी शरण में आता है फिर भी वे स्वस्थ हैं क्योंकि वे सदैव अपने आत्मस्वरूप में स्थित हैं। ऐसे ही राजा जनक, शुकदेवजी महाराज, रानी मदालसा, गार्गी, सुलभा, नानकजी, कबीरजी, श्री रामकृष्ण परमहंस आदि अनेकों महापुरुष अपने आत्मस्वरूप में स्थित थे। अब साँई आसाराम की ऐसी आशा है कि 'आप सब भी स्वस्थ हो जाओ।'

कोई कहे कि : 'बापू ! हमें सर्दी, बुखार आदि कुछ भी नहीं है। हम स्वस्थ हैं।'

नहीं... हकीकत में तो आपका शरीर स्वस्थ है, आप स्वस्थ नहीं हो। 'स्व' में स्थित होना ही 'स्वस्थ' होना है। 'स्व' हमारी आत्मा है, मुक्ति है, अमरता है। 'स्व' हमारा परमात्मा है। 'स्व' को पाना हमारा निजी जन्मसिद्ध अधिकार है। यदि उसको प्राप्त कर लें तो हम सदा के लिये स्वस्थ हो जायें। फिर हमारा शरीर बड़े-बड़े महलों में रहे तो हममें उसका अहंकार न आये और झोंपड़ी में रहे तो उसका हमें विषाद न हो क्योंकि हम 'स्वस्थ' अर्थात् 'स्व' में स्थित हो चुके हैं।

पूरे हैं वो मर्द जो हर हाल में खुश हैं...
मिला अगर माल तो उस माल में खुश हैं।
हो गये बेहाल तो उस हाल में खुश हैं।
कभी ओढ़े टाट तो कभी बाट में खुश हैं॥

चित्त की समता हमारी आंतरिक शक्तियों को बढ़ाती है जबकि विषमता हमारे बल और ओज को क्षीण कर देती है।

हमारा चित्त यदि अपवित्र होता हो तो उसके दो कारण हैं। वे दो कारण यदि समझ में आ जायें तो चित्त की अपवित्रता दूर हो जाये। एक है सुख की लालसा और दूसरा है दुःख का भय। इन दो कारणों से हमारा चित्त अपवित्र होता है। सुख के दुष्परिणामों को जानते हुए भी हम उसकी तीव्रता से प्रभावित होने के कारण उसके प्रति अज्ञानी हो जाते हैं, समझदार होकर भी नासमझी में फिसल जाते हैं।

घर से भरपेट भोजन करके निकले। रास्ते में किसी चीज की खुशबू आयी... जानते हैं कि उसे खाने से अम्लपित्त (एसिडिटी) होगी फिर भी खा लिया तो यह हुआ समझदार होकर भी नासमझी का व्यवहार। जगत के सुख में जो फिसल जाता है, वह बुद्धिमान् होते हुए भी मूर्ख है।

लेकिन जिन्होंने सुख-दुःख, मान-अपमान और प्रिय-अप्रिय में भी चित्त की समता को प्राप्त कर लिया है, जो सुख-दुःख को स्वप्नवत् समझते हैं ऐसे ज्ञानी महापुरुष ही 'स्वस्थ' हैं।

संसार में सुख-दुःख का सिलसिला तो चलता ही रहता है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहाँ सुख होता है वहाँ दुःख भी अवश्य होता है और जहाँ दुःख होता है वहाँ सुख भी आता ही है। सुख-दुःख तो आते-जाते रहते हैं लेकिन हम उनसे मिल जाते हैं इसीलिये सुखी-दुःखी होते रहते हैं। उनसे अलग होकर हम अपने-आपको जान लें तो बेड़ा पार हो जाये... उनके साक्षी होकर हम अपने आत्मस्वरूप में स्थित हो जायें तो कल्याण हो जाये।

संत नामदेवजी महाराज एक ऐसे ही महापुरुष थे जो अपने आत्मस्वरूप में स्थित थे। उनके जीवन में कितनी ही अनुकूलता-प्रतिकूलताएँ आयीं लेकिन वे न तो अनुकूलता में आसक्त होते थे और

न ही प्रतिकूलता से भयभीत होते थे।

एक बार उनके घर उनकी पत्नी के दो भाई अतिथि होकर आये। पत्नी ने कहा :

''आप तो पूरा दिन 'विठ्ठल... विठ्ठल...' करते रहते हैं। मेरे भाई आये हैं। उनके भोजन की क्या व्यवस्था करेंगे ? उनको क्या खिलायेंगे ?''

नामदेवजी : ''तू भोजन की चिंता क्यों करती है ? अभी दोपहर को आये हैं। शाम तक के भोजन की व्यवस्था तो है। कल एकादशी को उपवास है। ठाकुरजी का जो प्रसाद होगा, वही उनको देंगे और हम भी उसे ग्रहण करेंगे। परसों की दोपहर आने में ४८ घंटों की देर है, उसकी अभी से चिंता क्यों करती है ? अभी तो 'विठ्ठल... विठ्ठल...' करो।''

वह तो संसार में सत्यबुद्धि रखनेवाली थी अतः चिंता करती रही किन्तु नामदेवजी चले गये भगवान विठ्ठल के मंदिर में। 'विठ्ठल... विठ्ठल...' का कीर्तन करते-करते वे तो विठ्ठल के ध्यान में तल्लीन हो गये, उनके साथ एकाकार हो गये और भूल ही गये कि कीर्तन कर रहे हैं... उनका देहाध्यास छूट गया।

अब विठ्ठल को चिंता हो गयी नामदेव के व्यावहारिक संबंधों की। वे उनके घर एक सेठ के वेश में गये एवं उनकी पत्नी से उन्होंने पूछा :

''नामदेव कहाँ हैं ?''

पत्नी : ''विठ्ठल के मंदिर में गये हैं।''

सेठ : ''उनको यह थैली देना और कहना कि जितने सोने के सिक्के उपयोग में लेने हों, उतने ले लें। पाँच-छः महीने बाद आऊँगा। थोड़े-बहुत सिक्के बचे होंगे तो ले जाऊँगा, नहीं तो कोई बात नहीं। ...और नामदेव को मेरा प्रणाम कहना।''

उनकी पत्नी को अत्यंत आश्चर्य हुआ ! उसने पूछा : ''आपका नाम क्या है ?''

सेठ : ''तुमको जो नाम रखना हो वह रख सकती हो।''

पत्नी : ''मैं मेरे पतिदेव से क्या कहूँगी कि यह थैली कौन लाया है ?''

सेठ : ''नामदेवजी से कह देना कि केशवसेठी नाम के कोई सेठ आये थे, वे ही यह थैली दे गये हैं।''

संध्या हुई। नामदेवजी महाराज ध्यान से उठे एवं घर आये। केशवसेठी जो कह गये थे वे सारी बातें पत्नी ने उनको बताईं।

सुख-दुःख में स्वस्थ रहनेवाले नामदेवजी को पहचानने में देर न लगी कि केशवसेठी के रूप में स्वयं विठ्ठल ही यह थैली दे गये हैं। वे बोले : ''उपयोग में लाने को ही कह गये हैं न ? प्रभात होने दे।''

प्रभात हुई। नामदेवजी ने साधु-संतों को आमंत्रित करके भण्डारा कर दिया। सोने की कुछ मुहरें बाकी थीं किन्तु वे भी उन्होंने बाँट दीं। एक शाम को सोने की मुहरों से भरी थैली आयी एवं दूसरी शाम होने के पहले ही वह खाली हो गयी।

नामदेवजी की पत्नी को हुआ कि : 'इतनी गरीबी में सोने के सिक्के मिले फिर भी उन्हें बचाकर रखे नहीं। अच्छा हुआ कि उनमें से दो कटोरी मुहरें निकालकर मैंने अलग रख दिये हैं, नहीं तो वे भी बँट जाते।'

नामदेवजी को इस बात का पता नहीं था लेकिन वे जिसका ध्यान करते थे उस सर्वेश्वर को तो सब पता था। उसने जिस थैली में सोने की मुहरें छिपाकर रखी थी उसे वह देखने गयी। थैली खोलकर देखी तो कोयले ! उसे आश्चर्य हुआ कि थैली को गाँठ लगाकर रखी थी फिर कोयले कैसे हुए ?

वह लज्जा से भर उठी। आखिर उससे रहा न गया। उसने अपने पतिदेव को सारी बातें बता दीं : ''आपके लिये केशवसेठी जो स्वर्णमुहरें दे गये थे उनमें से दो कटोरी मुहरें मैंने छुपाकर रख दी थीं क्योंकि आप तो सोने और मिट्टी को समान जानते हैं। आप सभी मुहरें बाँट देंगे इस डर से उन्हें छुपा रखी थीं लेकिन जब मैंने थैली खोलकर देखा तो उसमें से कोयले निकले !''

नामदेवजी : ''वे मुहरें सोने से कोयला बन सकती हैं तो कोयले से सोना भी बन सकती हैं... इसमें क्या बड़ी बात है ? उन्हें इधर ले आ।''

पत्नी ले आयी। नामदेवजी ने जैसे ही हाथ घुमाया वैसे ही कोयले की वे मुहरें तुरन्त पहले जैसी सोने की हो गयीं।

नामदेवजी की पत्नी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि : 'जिनके हाथ घुमाते ही कोयला सोना हो गया

ऐसे भगवद्स्वरूप पति को मैं दिन-रात परेशान करती रहती हूँ !' उसने क्षमा माँगी।

नामदेवजी सुख-दुःख में स्वस्थ रहे तो प्रकृति भी उनके अनुकूल हो गयी एवं अनुकूलता में भी आसक्त न हुए तो प्रतिकूल पत्नी भी धीरे-धीरे उनकी भक्त होने लगी।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने सुंदर कहा है :

समदुःखसुखःस्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥

खुद भी शांति पाओ, औरों को भी पाने दो...

सत्त्वगुण का अभ्यास रोमांचित करनेवाला सुख देता है, रजोगुण का अभ्यास कोलाहल का सुख देता है और तमोगुण का अभ्यास थका देता है। कुछ लोग पाप का अभ्यास करते हैं। भगवान का भजन और खुदा की इबादत इन्सान की भलाई के लिए होती है, शोर करनेवालों को संत कबीरजी ने चेतावनी दी है :

पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहाड़...
कंकड़-पत्थर जोड़के दियो मस्जिद बनाय।
ताते मुल्ला चढ़ि बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदा॥

...पर अभी तो शोर करनेवाले माइकों का उपयोग कर रहे हैं। आज कल तो माइकों में दिखावे की भक्ति का जोर बढ़ गया है। 'मुहल्ले के, गाँव के लोगों को चाहे विघ्न हो फिर भी हम तो चिल्लाते ही रहेंगे...' शोर करके लोगों की शांति भंग कर रहे हैं, विघ्न डाल रहे हैं या प्रभु अथवा मालिक की बंदगी कर रहे हैं ? खामखाह माइक में चिल्लानेवालों से ऐसा प्रश्न पूछना भी कठिन हो रहा है। माइकों में बिनजरूरी चिल्लाओ कम। खुद शांति पाओ, औरों को भी शांति में रहने दो। माइकों में अति शोर न करो। दो-पाँच आदमी की संख्या में माइकों में शोर क्यों करना ? भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

''अभ्यासयोग करो।''

बिनजरूरी माइकों में चिल्लाओ कम।

- सम्पादक

राजा सुरघ एवं परघ का ज्ञानार्जन

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

अष्टावक्रजी महाराज कहते हैं :

आपदः सम्पदः काले दैवादेवेति निश्चयी।
तृप्तः स्वस्थेन्द्रियो नित्यं न वाञ्छति न शोचति॥

'विपत्तियाँ और सम्पत्तियाँ दैवयोग से ही समय पर आती हैं, ऐसा निश्चय करनेवाला पुरुष सदा संतुष्ट व स्वस्थेन्द्रिय हुआ अप्राप्त वस्तु की न कोई कामना करता है और न नष्ट हुई वस्तु का शोक करता है।' (अष्टावक्र गीता : ११.३)

दो मित्र थे। एक थे क्रांत देश के राजा सुरघ एवं दूसरे थे पारस देश के राजा परघ। दोनों वात्सल्य भाव से अपनी-अपनी प्रजा का पालन करते थे।

ऐसा कोई काल नहीं है कि जिसमें हमेशा एक जैसा राज्य-व्यवहार रहा हो, फिर चाहे राजा जनक हों, राजा रघु हों या राजा परघ हों। शरीर, शरीर के संबंध एवं व्यवहार में परिवर्तन होता ही है। चाहे कितना ही स्वस्थ शरीर हो, मजबूत संबंध हो लेकिन किसी-न-किसी दिन कुछ-न-कुछ गड़बड़ी होती ही है। इसीका नाम संसार है।

खून पसीना बहाता जा,
या तान के चादर सोता जा।
यह किश्ती तो हिलती जायेगी,
तू हँसता जा या रोता जा॥

मर्जी आपकी !

सुरघ एवं परघ दोनों न्यायपरायण, संयमी,

उत्साही एवं प्रजापालक राजा थे। प्रजा का शोषण नहीं अपितु उसका दुःख दूर करने एवं उसकी सेवा करने में विश्वास रखनेवाले थे।

एक समय राजा परघ के राज्य में अकाल पड़ा जिसमें प्रजाजनों का पापरूपी दोष ही कारण था। राजा सात्त्विक थे , लोगों का शोषण नहीं करते थे अतः प्रजा को छूट-छाट थी। स्वतंत्रता मिलने से लोगों में संयम नहीं रहा और सत्संग भी नहीं मिलता था अतः वे स्वेच्छाचारी हो गये। जो आये, सो खाये-पिये... शराब-मांस आदि व्यसनों से ग्रस्त हो गये। ऐसा करते-करते जिह्वा की लोलुपता बढ़ी और साथ ही काम-विकार की लोलुपता भी बढ़ने लगी। **जिसकी जिह्वा संयमी न हो उसकी कामवृत्ति संयमी हो इसमें संदेह है। जिह्वा पर संयम हो तभी काम-विकार पर संयम होता है।**

प्रजा विषय-भोगों में लिप्त रहने लगी। इससे उसका बल, ओज-तेज क्षीण हो गया। प्रकृति कोपायमान हुई। उसके प्रकोप से वर्षा नहीं हुई और अकाल पड़ गया। अन्न-जल के अभाव में भूख-प्यास से व्याकुल होकर लोग असमय ही कालकवलित होने लगे।

राजा परघ ने प्रजा को इस विनाश से बचाने के लिये अनेकों उपाय किये किन्तु सब निष्फल हुए। कायदे-कानून तो बहुत होते हैं लेकिन हमारा मन पवित्र हो तभी लोगों को हमारी बात समझ में आ सकती है। राजा परघ के मन में हुआ कि : 'मेरे राज्य में अनाचार, भूखामरी आदि दोष फैल गये हैं जिन्हें रोक सकने में मैं असमर्थ हूँ। वास्तव में तो मुझे राज्य करना ही नहीं आता है क्योंकि मैंने अपने आप पर ही राज्य नहीं किया तो लोगों पर राज्य कैसे कर सकता हूँ ? मैं अपनी वासना को पोसकर राजाधिराज कहलाता हूँ लेकिन लोगों को आत्मसिंहासन पर बैठाने का ज्ञान तो मुझमें है नहीं। राजा अज्ञानी होगा तो उसकी प्रजा भी दुःखी होगी ही। अतः जब मैं अपने आत्मपद को, परम पद को पाऊँगा तभी राज्य का भला कर सकूँगा।'

ऐसा निर्णय करके उन्होंने राज्य का त्याग कर दिया और वे तपस्या करने के लिये अरण्य में चले गये। उनकी बुद्धि तो शांत थी ही, अपने मन-इन्द्रियों का भी उन्होंने दमन कर लिया था अतः वहाँ एक पर्वत की कंदरा में आसन लगाकर वे तपस्यारत हो गये। वृक्ष से स्वयं सूखकर गिरे हुए पत्ते ही उनका आहार था। इस प्रकार वे चिरकाल तक अग्नि की भाँति सूखे पत्तों का ही आहार करते रहे, जिससे तपस्वियों के मध्य 'राजर्षि पर्णाद' के नाम से विख्यात हुए। तदनंतर एक सहस्र वर्षों की घोर तपस्या और साधना-अभ्यास के द्वारा परमात्म-कृपा से उन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई।

राजर्षि पर्णाद को अब न सुख के प्रसंग में हर्ष होता है और न दुःख के प्रसंग में शोक। जैसे, सूर्य के घर में रात्रि होती है कि नहीं यह सोचना व्यर्थ है ऐसे ही ज्ञानी के चित्त में सुख-दुःख होता है कि नहीं यह प्रश्न करना व्यर्थ है। जैसे सूर्य, सूर्य ही है वैसे ज्ञानी, ज्ञानी ही हैं।

ज्ञानी की गति केवल ज्ञानी ही जान सकते हैं, दूसरों के बस की बात नहीं है। वे सदैव अपने आत्मस्वरूप में शांत भाव से स्थित होते हैं। युद्ध के मैदान में भी उनके चित्त में शांति होती है। क्रोध करते हुए भी भीतर से शांत होते हैं, मोह का व्यवहार करते हुए भी निर्मोही होते हैं और अहंकार करते हुए भी निरहंकारी होते हैं। जैसे, आकाश सर्वत्र व्याप्त है। हमारे कान-नाक, मुँह आदि शरीर के अंगों व घर-दुकान में सर्वत्र आकाश है फिर भी वह सबसे निर्लेप है। हमारा घर दूर हट जाये या शरीर न रहे फिर भी आकाश का कुछ नहीं बिगड़ता। आकाश सबके साथ मिला हुआ है फिर भी सबसे न्यारा है। ऐसे ही ज्ञानी महापुरुष पूरे ब्रह्माण्ड के साथ एक हुए होते हैं फिर भी सबसे निर्लेप नारायण होकर आत्मस्वरूप में निमग्न रहते हैं।

राजर्षि पर्णाद इसी अवस्था को प्राप्त हो गये एवं स्वेच्छानुसार सर्वत्र विचरने लगे। एक दिन वे अपने मित्र राजा सुरघ के राज्य में पहुँचे। उनको भी महर्षि माण्डव्य की कृपा से आत्मज्ञान हो चुका था। अतः वे शीघ्र ही राजर्षि पर्णाद को पहचान गये।

वे दोनों पहले के मित्र तो थे ही, साथ ही पूर्ण ज्ञानी भी थे। वे परस्पर एक-दूसरे का आदर-

सत्कार करके यों कहने लगे : 'अहो ! निश्चय ही आज मेरे कल्याणमय पावन सत्कर्मों के फल का उदय हुआ है, जिससे मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ।' उस समय उनके हृदय आनंद से परिपूर्ण हो गये थे। वे परस्पर एक-दूसरे को आलिंगन करके एक ही आसन पर विराजमान हुए।

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है :

'वे ही मित्र सच्चे मित्र हैं, वे ही शास्त्र सत्शास्त्र हैं और वे ही दिन शुभ दिन हैं जिनके सहयोग से वैराग्यरूपी उल्लास से युक्त परमात्मविषयक चित्त का अभ्युदय स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है।' (उपशम प्रकरण, सर्ग : ६४)

राजा सुरघ एवं राजर्षि पर्णाद ऐसे ही मित्र थे। दोनों में सुन्दर वार्तालाप हुआ।

जो मनुष्य पुण्यकर्म करते हैं, वे सुख भोगकर आयुष्य का नाश करते हैं और जो मनुष्य पापकर्म करते हैं, वे दुःख भोगकर आयुष्य का नाश करते हैं। बुद्धिमान् तो वह है जो पाप से बचता है और पुण्य का फल ईश्वर को अर्पित करके ईश्वर को पाता है।

राजर्षि पर्णाद कहते हैं : ''राजन् ! इस राजसी वातावरण में रहते हुए भी आपके चित्त में किसी चीज के प्रति कोई आकर्षण नहीं है। निश्चय ही आपको परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो गया है। इसीलिये आपका अंतःकरण परम शांतिरूप शीतलता से युक्त हो गया है। संकल्पों से रहित जो परम विश्राम और परम उपशम समाधि है उसमें अब आप स्थित हुए हैं।''

राजा सुरघ बोले : ''हे भगवन् ! आप मुझसे ऐसा तो कहिये कि 'संपूर्ण संकल्पों से रहित परम शांति ही कल्याणप्रद है...' परन्तु समाधि के लिये क्यों कहते हैं ? क्योंकि महात्मन् ! जो तत्त्वज्ञानी महात्मा पुरुष हैं, चाहे समाधिस्थ रहें चाहे व्यवहार करें, उनका तो स्वरूप ही सदा समाधिस्थ-सा हो जाता है। वे कभी असमाहित चित्तवाले हो ही नहीं सकते।

जिनका चित्त प्रबुद्ध हो गया है, ऐसे तत्त्वज्ञानी महात्माओं की परम निष्ठा आत्मारूपी अद्वितीय तत्त्व में हो जाती है इसलिये वे सांसारिक व्यवहारों को करते हुए भी सर्वदा समाधिसंपन्न ही बने रहते हैं।''

सदा समाधि संत की, आठों प्रहर आनंद।
अकलमता कोई ऊपजे, गिने इन्द्र को रंक॥

इस प्रकार परस्पर ज्ञानचर्चा करके दोनों प्रसन्न हुए। उन्होंने एक-दूसरे का आदर-सत्कार किया और फिर वे अपने-अपने अभीष्ट स्थान को चले गये। उनकी वार्ता में धन, वैभव, भोग, वासना व अहंकार एवं मिथ्या संसार का महत्त्व न था। सत्य, ज्ञान व परमात्म-प्रेम तथा आत्मानंद व जीवन का सारतत्त्व ही उनकी वार्ता का विषय था। आप भी राजा सुरघ व पर्णाद की नाईं अपने व्यवहार, विचार और वार्ता में पारमार्थिक ज्ञान, पारमार्थिक प्रेम व पारमार्थिक आनंद को लायें।

मूल्यवान् समय को व्यर्थ के विचार, व्यर्थ की चर्चा, व्यर्थ के विकार में न गँवायें। परम रस पायें।

*

डॉक्टर कहते हैं...

* आदमी बीमार पड़ने पर बेवकूफ नहीं हो जाता किन्तु दवा, ऑपरेशन आदि आधुनिक चिकित्सा के नाम पर उसे बेवकूफ बनाया जा रहा है। प्रचारतंत्र ने आदमी के विचारतंत्र को भ्रष्ट करके बिल्कुल कुंठित कर दिया है। *- डॉ. जॉनसन*

* हम जो कुछ खाते हैं उसके एक तिहाई हिस्से पर जीते हैं, शेष दो तिहाई हिस्से पर डॉक्टर जीते हैं। *- डॉ. एस. कोपलेंड*

* हम जिसके बारे में कुछ नहीं जानते उस मनुष्य के शरीर में ऐसी दवा पहुँचाते हैं जिसके विषय में हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है। *- डॉ. विलियम आस्लर*

* मैंने अपने सुदीर्घ अनुभव में यह देखा है कि अधिकांश ऐपेंडिसाइटिस और पित्ताशय की पथरी के मामलों में शल्यक्रिया की बिल्कुल आवश्यकता नहीं होती। *-डॉ. जे. बी. डेवर*

* तोप, तलवार, बंदूक, महामारी और अकाल से भी अधिक बर्बादियाँ दवाओं ने की हैं।

प्रेषक : एल. कान्त भारद्वाज
भारद्वाज क्लीनिक लैबोरेटरी, मेन रोड़, सामाना।

मन के जीते जीत...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

जैसे, सागर से लहरियाँ उठती हैं, ऐसे ही सच्चिदानंद परब्रह्म परमात्मारूपी सागर से आपका मन उभरता है। मन के दो छोर हैं : चैतन्यस्वरूप परमात्मा और संसार।

जैसे, एक पुल नदी के दो किनारों को जोड़ता है, ऐसे ही परमात्मा एवं जगत को जोड़नेवाले सेतु का नाम है मन। मन अगर शरीर एवं संसार को 'मैं-मेरा' मानकर चलता है तो नश्वर संसार में ही जीवन खप जाता है लेकिन वही मन अगर परमात्मा को ही अपना वास्तविक स्वरूप मानकर उसे पाने का यत्न करता है तो शाश्वत् अमर पद को पा लेता है।

किन्हीं महापुरुष ने ठीक ही कहा है :

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
मन से ही तो पाइये, पारब्रह्म की प्रीत॥

मन से मनुष्य संसार-बंधन में बँधता है एवं मन से ही इससे मुक्त होता है। शास्त्रों में भी कहा गया है :

मनः एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।

'मन ही मनुष्यों के बंधन एवं मोक्ष का कारण है।'

मन है प्रकृति का और कल्पना होती है मन की। प्रकृति परिवर्तनशील है तो मन भी परिवर्तनशील है और मन परिवर्तनशील है तो कल्पना भी परिवर्तनशील है। इसलिए अपने मन को ऐसा बनाओ कि दुःख का प्रभाव न पड़े और सुख की गुलामी न रहे। मन को मन से जगाओ। जैसे, उधार के पैसों से तीर्थयात्रा करनेवाला व्यक्ति यात्रा का गर्व नहीं करता, दूसरे के सहारे नदी पार करनेवाला व्यक्ति तैरने का अभिमान नहीं करता, जन्मांध देखने का गर्व नहीं करता, विधवा सुहागिन होने का गर्व नहीं करती, ऐसे ही इस मन को किसी चीज का गर्व न होने दो क्योंकि परमात्मा के बिना वह कंगाल है, परमात्म-सत्ता के बिना वह विधवा जैसा है। परमात्म-चेतना के बिना मन जन्मांध है। मन को परमात्मा की चेतना मिलती है, परमात्मा का सुहाग एवं ऐश्वर्य मिलता है ऐसी समझ से मन को समझदार बनाओ।

दुःखी होने का अभिमान न करो। 'मैं दुःखी हूँ...' यह अभिमान से होता है क्योंकि मन में 'मैं हूँ' की कल्पना है तभी तो 'मैं दुःखी हूँ...' यह महसूस होता है। ऐसे ही 'मैं सुखी हूँ...' यह भी अभिमान से होता है। लेकिन भगवान की सत्ता के बिना मन का 'मैं' पैदा ही नहीं हो सकता। जैसे, पानी के बिना लहर पैदा नहीं हो सकती, मिट्टी के बिना मिट्टी के घड़े नहीं बन सकते, रूई के बिना सूती कपड़े नहीं बन सकते, ऐसे ही परमात्मा के बिना मन का 'मैं' पैदा नहीं हो सकता। जो कुछ मन में है, वह परमात्मा की सत्ता लेकर है। मन इस सत्ता को भूल जाता है और कल्पना में उलझ जाता है।

''क्या हाल हैं ?''

''मैं दुःखी हूँ... मैं ठीक हूँ...''

'मैं दुःखी हूँ... मैं ठीक हूँ...' यह भी परमात्मा की सत्ता से बोलता है। परमात्मा की सत्ता वही-की-वही है लेकिन मन जैसी-जैसी कल्पना या भावना करता है ऐसा उसे दिखता है और जैसा-जैसा देखने-सोचने का ढंग होता है ऐसी-ऐसी कल्पना या भावना बनती है। इसलिए देखने-सोचने का ढंग ऊँचा कर दो, अपनी नज़र बदल दो।

नज़र बदली तो नज़ारे बदल गये।
किश्ती ने बदला रुख तो किनारे बदल गये॥

जो मन का रुख परमात्मा से मोड़कर संसार के भोग की तरफ ले जाते हैं, वस्तु-व्यक्ति से सुख लेने की तरफ ले जाते हैं, पाप की तरफ ले जाते हैं वे देर-सबेर पाप-ताप में तपते रहते हैं और जो प्रभु के ज्ञान ध्यान में ले जाते हैं वे देर-सबेर प्रभुमय हो

जाते हैं। संसार की वस्तु संसार के काम आये और अपना अंतरात्मा परमेश्वर अपने पर संतुष्ट रहे ऐसा यत्न करना चाहिए।

यज्ञ, तप, व्रत, दान आदि करने से जितना पुण्य होता है, उससे भी अधिक पुण्य शास्त्र-अध्ययन एवं सत्संग करने से और भगवान के ज्ञान-ध्यान का अनुसंधान करने से हो जाता है। मन को इसमें लगाये तो मनुष्य पुण्यात्मा हो जाता है।

एक होते हैं पापात्मा, दूसरे होते हैं पुण्यात्मा और तीसरे होते हैं महात्मा। महात्मा भी तो मन से ही होते हैं। 'महात्मा' अर्थात् महान् आत्मा। जिनको महान् परमात्मा का ज्ञान, गुरु का प्रसाद पच गया है उन ब्रह्मज्ञानी संत के कर्म न पापात्मा की नांईं कर्त्ता होकर होते हैं और न पुण्यात्मा की नांईं कर्त्ता होकर होते हैं वरन् उनके कर्म आत्मज्ञानी होकर होते हैं इसलिए वे न पुण्यात्मा होते हैं, न पापात्मा होते हैं। ऐसे महात्मा स्वयं तो संसार के बंधनों एवं प्रभावों से छूट जाते हैं, साथ ही औरों को भी उनसे छूटने का उपाय बताकर उन्हें मुक्ति के पथ पर अग्रसर कर देते हैं।

स्वास्थ्य पर बीजमंत्र का प्रभाव

मंत्रों का आविष्कार मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने किया। वे गहरे में गये तो उन्हें सूत्रात्मक मंत्र मिले जिन्हें बीजमंत्र कहते हैं। बीजमंत्र एक ही शब्द में बहुत-सा अर्थ संजोये हुए होते हैं। जैसे 'ॐ' बीजमंत्र है उसी प्रकार 'टं' भी बीजमंत्र है।

'टं' यह बीजमंत्र चंद्रदेव का प्रतीक है। अचानक आयी हुई किसी बाधा के लिये 'टं' का जाप पर्याप्त होता है। एक भोजपत्र पर 'टं' लिखकर दाहिनी भुजा पर ताबीज में बांधने से वह ताबीज सर्व विघ्ननाशक के रूप में काम करता है। शरीर में कैल्शियम की कमी, नकसीर फूटने, महिलाओं के दूध कम बनने तथा नवजात शिशु के अधिक रोने-चिल्लाने पर एक कागज पर ग्यारह बार 'टं' लिखकर गले में ताबीज की तरह धारण करवाने से लाभ होता है, बच्चे का रोना-चिल्लाना शांत हो जाता है।

श्रद्धा का चमत्कार

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

जीवन में श्रद्धा का होना अत्यंत जरूरी है। श्रद्धा के बिना तो लौकिक व्यवहार भी नहीं हो सकता है तो परमार्थ कैसे सधे ? श्रद्धा के बल पर ही निर्गुण-निराकार ईश्वर सगुण और साकार हो उठता है। धन्ना जाट की दृढ़ श्रद्धा ने ही सिलबट्टे में से भगवान को प्रगट कर दिया था। नरो नाम की अहीर कन्या की श्रद्धा के बल से ही नाथद्वारे की मूर्ति से भगवान प्रगट हो गये थे। सिंधी भाइयों की श्रद्धा ने ही दरिया में से दरियालाल (भगवान झूलेलाल) को प्रगट कर दिया था। रामकृष्ण ने श्रद्धा के बल से ही मूर्ति में से माँ काली को प्रगट कर दिया था।

तीन-चार ठग थे। उन ठगों ने देखा कि एक सेठ बड़े श्रद्धालु हैं। उनको ठगने के लिये साधु का वेश ही उपयुक्त रहेगा। सेठ के आने के रास्ते पर उन्होंने अपने आदमी खड़े कर दिये एवं उन्हें समझा दिया कि किस तरह सेठ को कहीं पर ले आना है।

सेठ ससुराल से लौट रहे थे। उन लोगों ने कहा : ''सेठजी ! कहाँ जा रहे हैं ?''

सेठ : ''फलाने गाँव जा रहा हूँ।''

''अच्छा... हम तो फलाने महाराज के पास जा रहे हैं। वे बड़े सिद्ध पुरुष हैं, भगवत्प्राप्त महापुरुष हैं।''

ऐसा करके उन्होंने बहुत बखान किये। फिर कहा : ''सेठजी ! आप यहाँ तक आ ही गये हैं तो उनके दर्शन करते जाइये। आप तो श्रद्धालु हैं,

पुण्यात्मा हैं । आप यहाँ से थोड़ा-सा आगे जायेंगे तो आपको एक सिद्ध पुरुष मिलेंगे । उनके पास जाते ही वे सामनेवाले का नाम, उसके बेटे-बेटियों का नाम बता देते हैं ।''

सेठ तो थे ही श्रद्धालु और वे थे ठग । उनको तो अपना काम बनाना था । उन्हें तो जटाएँ लगाकर, साधु का वेश धारण कर सेठ को ठगना ही था ।

सेठ गये तो साधुवेशधारी ठग ने कहा :

''तुम फलाने हो । अभी अपनी ससुराल से लौट रहे हो । तुम्हारी बेटी का नाम फलाना है । तुम्हारा यह धंधा है ।''

ऐसा कहते हुए उसने सेठ का पूरा परिचय दे दिया । हालाँकि यह तो उसने पहले से ही जान रखा था किन्तु सेठ की उसमें श्रद्धा हो गयी । 'धन्य घड़ी, धन्य भाग्य !' ऐसा करके सेठ हररोज वहाँ आते-जाते रहे ।

कुछ समय बाद सेठ ने कहा : ''महाराज ! अब तो आपने अंतर्दृष्टि पा ली है, आत्मज्ञान पा लिया है । आप पधारकर मेरा घर पावन कीजिये ।''

असली माल से नकली माल की 'पेकिंग' ज्यादा आकर्षक होती है । 'हाँ-ना' करते-करते वह ठग सेठ के यहाँ गया । ठगों का मुखिया जो ठहरा ! बाकी के उसके साथी आते-जाते रहे । सेठ-सैठानी की श्रद्धा बढ़ गयी और उस ठग ने घर में रहते-रहते सारी जासूसी कर ली ।

एक दिन सेठ-सेठानी को कहीं जाना था । अतः बाबाजी को भोजन कराने के लिये वे अपनी युवती कन्या को बाबाजी की सेवा में रखकर गये । माँ-बाप की श्रद्धा थी तो युवती कन्या की भी श्रद्धा थी । सेठ-सेठानी चले गये तो ठग ने युवती कन्या से कहा :

''तुझे भगवान के दर्शन करने हैं ?''

युवती : ''हाँ, महाराज !''

ठग : ''जैसे पार्वती को शिवजी मिल गये, लक्ष्मी को नारायण मिल गये ऐसे ही तुझे भी भगवान मिल सकते हैं । एक काम कर । तू गहने-गाँठे पहनकर लक्ष्मी का रूप हो जा । फिर हम चलते हैं । बाद में मैं ठाकुरजी को बुलाऊँगा और तुरंत उनके दर्शन हो जायेंगे ।''

लड़की बड़ी श्रद्धालु थी । पिताजी तिजोरी की सब कुंजियाँ भी रखकर ही गये थे । वह हीरे-जवाहरात और रत्नजड़ित गहने-गाँठों से सज गई । वह साधुवेशधारी ठग उसे जंगल में ले गया । जंगल में एक पुराना कुआँ था । वहाँ ले जाकर उसने कहा :

''देख, ये सब गहने-गाँठे उतारकर मेरी झोली में डाल दे, नहीं तो भगवान कहेंगे कि ये सब मुझे दिखाने आयी है ।''

लड़की ने सब गहने उतारकर उस ठग की झोली में डाल दिये । फिर ठग ने कहा : ''अब तू कुएँ में देख । 'भगवान मिलो... भगवान मिलो...' ऐसा बोलती जा और कुएँ में देखती जा ।''

लड़की ने ऐसा ही किया । ऐसा करते-करते ठग ने कन्या को कुएँ में धक्का दे दिया और खुद सामान लेकर भागने की तैयारी में था कि इतने में उस कुएँ में से हास्य की आवाज आयी । वह चौंका ! 'यह क्या ? आवाज तो चीख की आनी चाहिए थी लेकिन यह कैसी आवाज ?' पास जाकर कुएँ में झाँका तो लड़की बोल रही थी :

''प्रभु ! प्रभु ! आपकी बड़ी कृपा हुई... आपने मुझे दर्शन दिये...'' फिर वह भावविभोर होकर कहने लगी :

''मेरे गुरुजी की जय हो ! गुरुजी की जय हो !''

ठग ने पूछा : ''क्या हुआ ?''

कन्या : ''भगवान मिल गये... प्रभु मिल गये ।''

ठग : ''मुझे तो नहीं दिखते ।''

कन्या : ''भगवान ! इनको भी दर्शन दो न !''

भगवान : ''इसकी बात छोड़ दे ।''

ठग ने तो ठगना चाहा था, सब गहने छीनकर लड़की को जान से मारना चाहा था लेकिन लड़की की दृढ़ श्रद्धा ने उसे प्रभु के दर्शन करवा दिये । यह श्रद्धा का ही चमत्कार है !

भगवान **कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थः** हैं । भगवान मीरा के विष के प्याले को अमृत बना

सकते हैं, धन्ना के सिलबट्टे से प्रगट हो सकते हैं तो क्या कुएँ में से प्रगट नहीं हो सकते ? भगवान सर्वत्र, सब समय, सब रूपों में प्रगट हो सकते हैं, सत्पुरुषों, सद्गुरुओं के अंतःकरण से दिव्य जीवन, दिव्य ज्ञान, पुण्यमय अमृत-अनुभव भी दे सकते हैं। ऐसे अमृतमय सद्गुरुओं के द्वार पर लंबी कतारें, लंबी तितिक्षाएँ सहन करके भी पूर्णिमाव्रतधारी पुनीत सुख का, शांति का सुंदर अनुभव भी पाते हैं। ...किन्तु आवश्यकता है दृढ़ श्रद्धा की।

यदि मनुष्य अपनी वास्तविक उन्नति चाहता है तो उसे इन चार बातों पर श्रद्धा रखनी चाहिए : (१) भगवान में श्रद्धा। (२) भगवत्प्राप्त महापुरुषों में श्रद्धा। (३) भक्ति, ज्ञान एवं योग का प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रों में श्रद्धा। (४) परलोक में श्रद्धा।

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।
बिनु महि गंध कि पावइ कोई॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा।
बिनु हरि भजन न भव भय नासा॥

'श्रद्धा के बिना धर्म का आचरण नहीं होता। क्या पृथ्वी तत्त्व के बिना कोई गंध पा सकता है ? क्या विश्वास के बिना कोई भी सिद्धि हो सकती है ? इसी प्रकार श्रीहरि के भजन बिना जन्म-मृत्यु के भय का नाश नहीं होता।'

(श्रीरामचरित० उत्तर० : ८९.२.४)

*

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

तेरा सब कुछ है मंजूर...

जहाँ प्रेम होता है वहाँ फरियाद नहीं होती। अपने इष्ट में सम्पूर्ण समर्पण और उनकी छोटी-से-छोटी आज्ञा का पालन यह आत्यन्तिक प्रेम का लक्षण है।

ऐसा ही एक आज्ञापालक नौकर महमूद बादशाह के दरबार में नौकरी करता था। वह कार्य में तत्परता, दक्षता के साथ समर्पण भाव की सुवास से सारे कार्य सुवासित कर देता था। इस कारण सम्राट का विशेष कृपापात्र बन गया। एक बार जंगल में शिकार करते महमूद उलझ गये। साथ में वह नौकर भी था। वे रातभर भटके, सुबह भूख ने सताया। एक जंगली फल मिल गया। महमूद ने दो टुकड़े नौकर को दिये, दो अपने लिये रखे। नौकर ने महमूद के हिस्से का फल भी उनसे अति आग्रहपूर्वक माँगा। हाँ-ना करते थोड़ा-सा टुकड़ा अपने मुँह में डालकर बाकी का उसे दे दिया। मुँह में डालते ही... तोबा-तोबा !

''तूने विचित्र और कड़वा फल प्यार से खा लिया, मेरा हिस्सा भी माँग लिया ?''

नौकर ने कहा : ''मालिक को कटु फल न खाना पड़े और मेरी नजरों में फल की अपेक्षा देनेवाले मालिक के हाथ की मधुरता-मिठास मुझे ज्यादा भाती है। फल कटु होने पर भी देनेवाले हाथ मेरे मालिक के थे इसलिये मुझे मधुरता का एहसास होता था।''

हम भी उस सर्जनहार मालिक के हाथ को

देखें। जीवन में मधुर अनुभव भी आते हैं, कटु प्रसंग भी आते हैं। उसके पीछे प्रभु के प्यारे हाथ होते हैं। मधुर व कटु अनुभव, संसार के सुख-दुःख, लाभ-हानि, जीवन-मरण को मायावी समझकर जहाँ से 'मैं' स्फुरित होता है उस मायापति में विश्रांति पायें। उस मधुमय परमेश्वर के परम प्रेम को, परम करुणा-कृपा को हर परिस्थिति में निहारें। वे मित्र व अनुकुलता देकर हमारा विषाद दूर करते हैं और शत्रु व प्रतिकूलता देकर हमारा अहंकार व आकर्षण दूर करते हैं। उनके मधुमय, मुक्तिमय, करुणामय हाथों को देखें।

बादशाह महमूद अपने उस नौकर की अनन्य भक्ति देखकर बहुत खुश हुए। बादशाह के प्रति उसके भक्तिभाव की चर्चा चारों ओर फैलने लगी। दूसरे वजीरों से यह देखा नहीं जा रहा था कि बादशाह उसे अधिक प्यार करें। वे बादशाह के पास उसके खिलाफ कोई-न-कोई फरियाद करते रहते किन्तु बादशाह तो सब जानते थे। वे उनकी बातों पर मन-ही-मन हँसते रहते। 'बादशाह के प्रति उस नौकर की निष्ठा दूसरों से अधिक है...' यह प्रत्यक्ष प्रमाणित करने के लिए अर्थात् 'दूध का दूध और पानी का पानी' सिद्ध करने के लिए एक शाम को महफिल का आयोजन किया गया जिसमें सभी वजीरों एवं प्रधानों को बुलाया गया। महफिल में शराब बाँटी गयी। बादशाह ने सभी को शराब पीने की आज्ञा दी। सबने आज्ञा मानकर शराब पीना शुरू कर दिया। फिर बादशाह ने आदेश दिया :

''अपनी प्यालियों को इतनी जोर से पटको कि वे टूट जायें।''

आज्ञानुसार सबने प्यालियाँ जोर से पटकीं और सबकी सब टूट गईं।

अब बादशाह ने उन सबकी कसौटी शुरू की। उन्होंने अपना रूप बदला और आगबबूला होकर सभी को एक साथ फटकार लगाई : ''ये प्यालियाँ क्यों तोड़ डाली ? राज्य का कितना सारा नुकसान कर डाला, कुछ समझ में आता है ?''

बादशाह के मात्र इतनी-सी फटकार पर सबने अपनी सहनशक्ति खो दी और वे कहने लगे :

''कमाल है ! आपकी आज्ञा से ही तो हमने ऐसा किया और आप हैं कि हमें ही डाँट रहे हैं ? एक तो आज्ञा मानो और ऊपर से डाँट भी खाओ।''

बादशाह महमूद जोरों से हँसने लगे। उन्होंने सबको वहाँ शांति से बैठ जाने के लिए कहकर उस भक्त नौकर को बुलाया और उन लोगों की तरह उसे भी प्याली में शराब निकालकर पीने को कहा। उस नौकर ने तो शराब जीवन में कभी चखी भी नहीं थी। वह शराब की बोतल को छूता तक नहीं था लेकिन मालिक की आज्ञा होने पर उसने तनिक भी शंका व्यक्त नहीं की कि : 'बादशाह ऐसा क्यों कह रहे हैं ? क्या बात है ? शराब मैं क्यों पीऊँ ? आदि आदि।' उसने तो बस, 'मालिक ने कहा है इसलिए पीना है...' ऐसा सोचकर पीना शुरू कर दिया। प्याली खाली होने पर बादशाह महमूद ने उसे भी आदेश दिया : ''इस प्याली को फेंक दे।''

जैसे, पहले सभी ने प्यालियाँ पटकी थीं, वैसे ही उस नौकर ने भी अपनी प्याली पटक दी और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये।

अब बादशाह ने क्रुद्ध होकर कहा :

''यह प्याली क्यों तोड़ डाली ? नौकरी करने पर भी राज्य की चीजों का नुकसान करता है ? अक्ल है कि नहीं ? दिमाग तो ठिकाने है न ?''

बहुत कुछ अनाप-शनाप सुनाने पर भी उस नौकर के चेहरे पर जरा-सी भी शिकन तक नहीं दिखाई दी।

बादशाह : ''आखिर तूने ऐसा क्यों किया ?''

नौकर : ''मालिक ! मेरी भूल हो गई, क्षमा करें।''

उसने ऐसा नहीं कहा कि : 'आपने ही तो कहा था और अब आप ही पूछ रहे हैं ?'

जहाँ प्रेम होता है, वहाँ फरियाद नहीं होती। जैसे महमूद का नौकर कटुफलों में भी महमूद के मधुमय हाथों को देख सकता है वैसे तुम भी परमात्मा के मधुमय हाथों को, उनके मधुमय विधानों को निहारने की निगाह बना लो न, भाई ! ॐ... ॐ... ! अपना प्रयत्न, दृढ़ पुरुषार्थ करो। परिणाम जो आये उसमें मधुमय हाथों की करुणा-

कृपा देखो।

तुलसी भरोसे राम के निश्चिंत हो के सोय।
अनहोनी होनी नहीं होनी हो सो होय॥

कबीरजी भी कहते हैं :

मेरो चिन्त्यो होत नहीं, हरि को चिन्त्यो होत।
हरि को चिन्त्यो हरि करे, मैं रहूँ निश्चिंत॥

नानकजी कहते हैं :

जो तिद भावे सो भलीकार...
काहू डोलत प्राणीया ?

हे सर्जनहार ! जो तुझे उचित लगे वही हमारे लिये बना। सम्पदाओं के पीछे आपदाएँ... आपदाओं के पीछे सम्पदाएँ... सुख के पीछे दुःख... दुःख के पीछे सुख... सरिता की नाईं सब बह रहा है। इन सबको 'मैं' रूप से जो जान रहा है उसी 'मैं' के माधुर्य में मन को डुबाया करो। 'मैं' जहाँ से उठता है वह चैतन्य आत्मा अपना आपा है।

बच्चियाँ जमाइयों की अमानत हैं, बच्चे बहूओं की अमानत हैं और शरीर स्मशान की अमानत है। शरीर के मरने पर भी जो नहीं मरता, वह मैं तेरा शाश्वत् सपूत हूँ। तू मेरा... मैं तेरा... ॐ आनन्द... ॐ शांति ॐ... ॐ माधुर्य...

डूबा करो उसी मधुमय परमात्मा में और सारी अवस्थाओं में उसी के हाथ को देखा करो।

*

मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है

युग मनुष्य को नहीं बनाता वरन् मनुष्य युग को बनाता है। परिस्थितियाँ मनुष्य को नहीं बनातीं वरन् मनुष्य परिस्थितियों को बनाता है।

राजा विक्रमादित्य के पास सामुद्रिक लक्षण जाननेवाला एक ज्योतिषी आया। उनके सामुद्रिक लक्षणों को देखकर वह ज्योतिषी हैरान रह गया कि : 'सामुद्रिक लक्षणों के आधार पर तो ये दुर्बल, दीन, हीन, कंगाल होने चाहिए लेकिन स्वस्थ, सम्पन्न और सम्राट हैं !' उनमें जो-जो लक्षण उस ज्योतिषी ने देखे, उनके विपरीत ही उनका व्यक्तित्व दिखाई दिया।

ज्योतिषी ने अपना सिर कूटा कि : 'हाय ! ज्योतिष विद्या पर मेरा आज तक का जो नियंत्रण था वह आज विपरीत सिद्ध हो रहा है।'

विक्रमादित्य : ''ज्योतिषी ! घबराइये मत। बाहर के लक्षणों से यदि आप नहीं समझ पा रहे हैं तो रुकिए...'' ऐसा कहकर विक्रमादित्य ने म्यान से तलवार निकाली और अपनी छाती पर तलवार की नोंक रखते हुए बोले : ''छाती चीरकर बताता हूँ, इधर के लक्षण भी देख लीजिये।''

ज्योतिषी : ''नहीं नहीं। मैं समझ गया। आप निर्भय हैं, पुरुषार्थी हैं इसीलिए सारी परिस्थितियाँ आपके अनुकूल हो गयी हैं।''

*

भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी

संतों ने एक स्वर से घोषणा की है कि जीव का परम पुरुषार्थ एकमात्र भगवद्प्रेम ही है । शेष जो चार पुरुषार्थ हैं, उनमें किसी-न-किसी रूप में 'स्व' सर्वथा लगा ही रहता है । एक भगवद्प्रेम ही ऐसा है जिसमें 'स्व' भी सर्वथा समर्पित हो जाता है, विलीन हो जाता है ।

प्रारम्भ से ही संतों की यह प्रेरणा रही है कि 'सभी जीव उसी अनन्त भगवद्प्रेम की प्राप्ति के लिये सचेष्ट हों और उसे प्राप्त कर लें...' और वे अपनी अन्तरात्मा से पूर्ण शक्ति से इसके लिए प्रयत्न करते रहे हैं । योग, कर्म, ज्ञान, ध्यान, जप, तप, विद्या, व्रत सब का एकमात्र यही उद्देश्य है कि भगवान के चरणों में अनन्य अनुराग हो जाय । वेदों ने भगवान के निर्गुण-सगुण स्वरूप की महिमा गाकर यही प्रयत्न किया है कि सब लोग भगवान से प्रेम करें ।

शास्त्रों ने सांसारिक वस्तुओं का विश्लेषण करके उनकी अनित्यता, दुःखरूपता और असत्यता दिखलाकर उनसे प्रेम करने का निषेध किया है और केवल भगवान से ही प्रेम करने का विधान किया है । यह सब होने पर भी अनादि काल से माया-मोह के चक्कर में फँसे हुए जीव भगवान की ओर जैसा चाहिए उस रूप में अग्रसर नहीं हुए । कुछ आगे बढ़े भी तो साधनों से पार जाना कठिन हो गया । गन्तव्य तक विरले ही पहुँच सके । भगवान को स्वयं इस बात की चिन्ता हो गयी । उन्होंने सोचा कि :

'यदि इस क्रम से इतने स्वल्प जीव मेरे प्रेम की उपलब्धि कर सकेंगे, तब तो कल्पों में भी प्रेम पानेवालों की संख्या अंगुली पर गिनने के बराबर ही रहेगी । इसलिये मुझे स्वयं जीवों के बीच चलना चाहिए, प्रकट होना चाहिए और ऐसी लीला करनी चाहिए कि मेरे अन्तर्धान होने पर भी वे मेरे गुणों और लीलाओं का कीर्तन, श्रवण एवं स्मरण करके मेरे सच्चे प्रेम को प्राप्त कर सकें ।'

भगवान आये और उनके गुण, लीला स्वरूप के कीर्तन, श्रवण, स्मरण की प्रेरणा भी आयी । अभी लीला-संवरण हो भी नहीं पाया था कि वाल्मीकिजी ने उन्हीं के पुत्र लव-कुश के द्वारा उनकी कीर्ति का गायन कराकर सुना दिया और भगवान से उनकी यथार्थता की स्वीकृति भी करवा ली । जगत में आदिकवि हुए वाल्मीकि, आदिकाव्य हुआ उनके द्वारा किया हुआ भगवान श्रीराम के गुण और लीला का कीर्तन । श्री हनुमानजी को वह कितना प्रिय लगा होगा, इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता । उन्होंने अपने मन में विचार किया कि : 'यह काव्य-संगीत अमर रहे... परंतु यह तो संस्कृत वाणी में है न ! आगे चलकर जब साधारण लोग संस्कृत से अनभिज्ञ हो जायेंगे तब वे इस रस का आस्वादन कैसे कर सकेंगे ?' उन्हें इस बात की चिन्ता हो गयी ।

श्री हनुमानजी ने वाल्मीकि महामुनि की योग्यता, उनका अधिकार हर तरह से निरख लिया, परख लिया । अन्त में उन्होंने वाल्मीकिजी से कहा कि : ''आपके हृदय में भगवान का प्रेम है । आपको संसार का कोई भय नहीं है । आप कलियुग में एक बार फिर से प्रगट होना । उस समय भी भगवान

श्रीराम के गुण और लीलाओं को आम जनता के लिए सुलभ कर देना। मैं आपकी रक्षा करूँगा।''

श्री वाल्मीकिजी ने उनकी आज्ञा स्वीकार की। उन्होंने कलियुग में जन्म लेकर श्रीरामलीला का मधुमय संगीत, गायन करने का वचन दिया। वे ही तुलसीदासजी के रूप में प्रकट हुए।

उन दिनों देश की परिस्थिति बड़ी विषम थी। विधर्मियों का बोल-बाला था। वेद, पुराण, शास्त्र आदि सद्ग्रन्थ जलाये जा रहे थे। एक भी हिन्दू अवशेष न रहे, इसके लिए गुप्त एवं प्रकट रूप से चेष्टाएँ की जा रही थीं। धर्मप्रेमी निराश हो गये थे। उन्हें अपने व्यक्तिगत सदाचारपालन की भी सुविधा प्राप्त नहीं थी। वे मन-ही-मन ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि :

'हे भगवान ! अब आप ही धर्म की रक्षा करें, आप ही सदाचार की डूबती हुई नौका को बचायें। आप ही अपने श्रीचरणों में विशुद्ध प्रेम होने का मार्ग बतायें। अब हमारे पास कोई शक्ति नहीं है, कोई बल नहीं है। हम सर्वथा निराश हैं। आपकी ही आशा है, आपका ही भरोसा है।'

देश की आवश्यकता, जनता की पुकार, धर्मप्रेमियों की प्रार्थना सर्वदा पूर्ण होती है। उनकी आवाज सुनी गयी। इस काम के लिये जो व्यक्ति त्रेता से ही सुरक्षित रख लिये गये थे, उन्हें प्रकट होने की आज्ञा दी गयी।

प्रयाग के पास यमुना के दक्षिण राजापुर नाम का एक ग्राम है। उन दिनों वहाँ एक आत्माराम दूबे नाम के सरयूपारीण ब्राह्मण रहते थे। वे अपने गाँव में प्रतिष्ठित, बुद्धिमान्, सदाचारी और शास्त्रों में श्रद्धा रखनेवाले थे। उनका गोत्र पाराशर था। उनकी धर्मपत्नी का नाम हुलसी था। वह बड़ी पतिव्रता थी।

बारह महीने तक गर्भ में रहने के पश्चात् संवत् १५५४, श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन उन्हीं दम्पती से श्री तुलसीदासजी का जन्म हुआ।

पन्द्रह सै चौवन विषै कालिन्दी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धरेउ शरीर॥

उस समय अभुक्तमूल नक्षत्र चल रहा था। पिता को बड़ी प्रसन्नता हुई। पुत्र के जन्म का उत्सव मनाया जाने लगा। दासी ने आकर कहा :

''महाराज ! चलिए, घर में आपकी बुलाहट है। बड़ी अद्भुत घटना घटी है। नवजात शिशु तनिक भी रोया नहीं, उलटे उसके मुँह से 'राम' शब्द निकला। देखने पर मालूम हुआ कि इसके मुँह में बत्तीसों दाँत मौजूद हैं। पाँच वर्ष के बालक जैसे लगते हैं, वैसा ही वह मालूम पड़ता है। मैं बूढ़ी हो गयी परंतु आज तक मैंने ऐसा बालक कहीं नहीं देखा। स्त्रियों में इस बात की बड़ी चर्चा चल रही है। कोई कुछ कहती है, कोई कुछ। आप चलकर समझाइये और बच्चे की माँ की चिन्ता मिटाइये।''

दूबेजी घर में गये। प्रसूतिघर के दरवाजे पर खड़े होकर उन्होंने नवजात शिशु को देखा। उनके मन में बड़ा खेद हुआ। उन्होंने सोचा कि यह मेरे पूर्वजन्म का पाप है, जिसके कारण ऐसा बालक हुआ है। भाई-बन्धु, ज्योतिषी सब इकट्ठे हुए। विचार हुआ। अन्त में यह तय हुआ कि यदि यह बालक तीन दिन तक जीवित रह जाय तो इसके सम्बन्ध में फिर सोचा जायेगा। सब लोग चले गये। तीन दिन बीतने पर आये।

श्रावण शुक्ल दशमी की रात में एकादशी लग गयी थी। एकादशी के साथ ही हुलसी के हृदय में यह सद्बुद्धि आयी। उसने अपनी दासी से कहा कि : ''प्यारी सखी ! अब मेरे प्राणपखेरू उड़ना चाहते हैं। तुम मेरे इस कलेजे के टुकड़े को लेकर अपने सास-ससुर के गाँव हरिपुर चली जाओ। तुम मेरे लल्ला का पालन-पोषण करना। भगवान तुम्हारा भला करेंगे। नहीं तो मेरे घर के लोग इस नन्हें-से निरपराध शिशु को फेंक देंगे। सखी ! यह बात किसी को पता न होने पाये। तुम रातोंरात चली जाओ।''

यह कहकर हुलसी ने अपने बच्चे को उसकी गोद में दे दिया और अपने सब गहने भी दे दिये। दासी बच्चे को लेकर चली गयी और एकादशी के प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में हुलसी ने अपना शरीर त्याग दिया। (क्रमशः)

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

होली पर्व का संदेश

[होलिकोत्सव दिनांक : ९ मार्च २००१]

होली हुई तब जानिये, संसार जलती आग हो।
सारे विषय फीके लगें, नहीं लेश उनमें राग हो।
हो शांति कैसे प्राप्त निश दिन, एक यह ही ध्यान हो।
संसार दुःख कैसे मिटे, किस भाँति से कल्याण हो॥

प्रह्लाद इस बात को जानते थे तभी अनेक विघ्न-बाधाओं से जूझते रहने पर भी ईश्वर में उनकी श्रद्धा नहीं डिगी। पर्वतों से उन्हें धकेला गया... सागर में डुबोया गया... हाथियों से कुचलवाने का प्रयत्न किया गया... सर्पों से कटवाने का प्रयास किया गया... और भी न जाने कितने-कितने प्रयास किये गये उनको मरवाने के, किन्तु उन्होंने परमेश्वर का स्मरण न छोड़ा। अनेक विघ्न-बाधाओं एवं पीड़ाओं के बीच भी वे मुस्कराते रहे।

प्रह्लाद को गोद में लेकर अग्नि में बैठ गयी होलिका लेकिन वह स्वयं जल मरी जबकि प्रह्लाद का बाल बाँका न हुआ।

नीच वृत्तिवालों के पास यदि आग में न जलने का सामर्थ्य हो तो भी वे जलते रहते हैं और प्रह्लाद जैसे भक्त उस अग्नि-परीक्षा से भी पार हो जाते हैं।

अनेक कष्टों-मुसीबतों के बीच भी मुस्कराकर जीने की कला जिनके पास है, उनका नाम है प्रह्लाद।

होली का उत्सव हमें यही पावन संदेश देता है कि हम भी अपने जीवन में आनेवाली विघ्न-बाधाओं का धैर्यपूर्वक सामना करें एवं कैसी भी विकट परिस्थितियाँ आयें किन्तु प्रह्लाद की तरह ही ईश्वर में अपनी श्रद्धा को अडिग बनाये रखें।

आज कल इस पवित्र उत्सव में नशा करना, विभत्स गालियाँ देना व रासायनिक रंगों के प्रयोग की कुप्रथाएँ प्रचलित हो गई हैं।

प्यालियाँ ही अगर पीना हो,
तो प्रभु की प्यालियाँ पीजिए।
होली ही अगर खेलना हो,
तो संत सम्मत खेलिए॥

हमारे स्वास्थ्य पर रंगों का अद्भुत प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार शरीर को स्वस्थ रखने के लिए विभिन्न तत्त्वों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार रंगों की भी आवश्यकता होती है। होली के अवसर पर प्रयुक्त प्राकृतिक रंग शरीर की रंग संबंधी न्यूनता को पूर्ण करते हैं, किन्तु सावधान ! यहाँ रंगों का आशय जहरीले या रासायनिक रंगों से नहीं है।

शास्त्रकारों ने पलाश (टेशू या ढाक) के फूलों के रंग का ही विधान किया है। यदि इस रंग में रंगा हुआ कपड़ा भिगोकर शरीर पर डाल लिया जाय तो वह रंग शरीर के रोमकूपों द्वारा आन्तरिक स्नायूमंडल पर अपना प्रभाव डालता है तथा संक्रामक रोगों से रक्षा करता है।

एतत्पुष्पं कफं पित्तं, कुष्ठं दाहं तृषामपि।
वातं स्वेदं रक्तदोषं, मूत्रकृच्छं च नाशयेत्॥

ढाक के पुष्पों का रंग कफ, पित्त, कुष्ठ, दाह, मूत्रकृच्छ, वायु तथा रक्तदोष का नाश करता है। शीत ऋतु के बाद ग्रीष्म ऋतु का आगमन होता है। ग्रीष्मकाल में सूर्य की किरणें हमारी त्वचा पर सीधी पड़ने के कारण हमारे शरीर में गर्मी बढ़ती है। अधिक ताप के कारण त्वचा के रोग होने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।

शरीर में गर्मी बढ़ने से स्वभाव में खिन्नता आ सकती है, गुस्सा बढ़ सकता है। इन मानसिक रोगों से बचाव करने में इन रंगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

होलिकोत्सव में प्रयुक्त पलाश के फूलों का प्राकृतिक नारंगी रंग रक्तसंचार की वृद्धि करता है,

मांसपेशियों को स्वस्थ रखने के साथ-साथ मानसिक शक्ति व इच्छाशक्ति को बढ़ाता है।

नारंगी रंग की बोतल में सूर्य-किरणों में रखा हुआ पानी खाँसी, बुखार, न्यूमोनिया, श्वासरोग, गैस बनना, हृदयरोग, अजीर्ण आदि रोगों में लाभदायक है। इससे रक्त के कणों की कमी की पूर्ति होती है। इसका सेवन माँ के स्तनों में दूध की वृद्धि करता है। ये प्राकृतिक रंग त्वचा की सुरक्षा करते हैं तथा उष्मीय ताप कम करते हैं। इससे शरीर की गर्मी सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है और सूर्य के तीक्ष्ण किरणों के विकृत प्रभाव से रक्षा होती है।

भारतीय संस्कृति का यह हर्षोल्लास से युक्त त्यौहार मन को प्रसन्न व शरीर को तन्दुरुस्त रखता है। इस पावन पर्व पर जहरीले रासायनिक रंगों से अपने स्वास्थ्य पर कुठाराघात न करें बल्कि उक्त प्राकृतिक रंगों से रंगें-रंगायें।

केमिकल के जहरीले रंगों से अपने आँखों को, त्वचा को, मुँह को बचायें व पलाश के पुष्पों के रंग से अपनी त्वचा को थोड़ा रंगें ताकि शरीर के सप्तधातु व सप्तरंगों का संतुलन सुंदर बना रहे, ग्रीष्म ऋतु की गर्मी झेलने की आपकी क्षमता बढ़े व बनी रहे। इन दिनों नींद व आलस्य की अधिकता होती है इसलिये ऋषियों ने कूदने-फाँदने और हल्ला-गुल्ला करने का यह होलिकोत्सव बनाया ताकि सर्दी में एकत्रित नाड़ियों का कफ गर्मी से पिघल जाये और जठरा में आ जाये। आलस्य से नींद बढ़ती है, पाचनतंत्र मंद होता है।

कूदना-फाँदना व कफनाशक चना, धानी आदि का प्रयोग करना हितावह है। बस, पाँच-सात दिन सावधानी रही तो पूरे चार मास के लिये स्वास्थ्य की सुरक्षा। प्रत्येक ऋतु-परिवर्तन में आरम्भ के पाँच-सात दिन सँभल जायें तो स्वास्थ्य सुंदर बना रहता है। खाँसी, दमा, सर्दी, कफजनित तमाम बिमारियों की जड़ें उखाड़कर फेंक दो। इस प्रकार के आहार विहार से और थोड़े-से पलाश (केसूड़े के पुष्प) के रंग से अपने सप्तधातु व सप्तरंगों को संतुलित कर दो।

सूरत आश्रम में उसी रंग से साधकों को रँगा जाता है। होली के शिविर में आनेवाले साधकों को निःशुल्क थोड़ा रंग घर ले जाने के लिए दिया जायेगा ताकि उनके कुटुम्बी व पड़ोसी भी स्वस्थ व सुखी रहें।

*

जब संत तुकारामजी के मण्डप में आग लगी...

[संत तुकारामजी महाराज जयंती : ११ मार्च २००१]

जो अपने मुख्य कर्त्तव्य अर्थात् परमात्म-ध्यान, परमात्म-ज्ञान, परमात्म-चिंतन में लीन रहते हैं, उनका ऐहिक कर्त्तव्य ईश्वर स्वयं पूरा करवा देते हैं।

संत तुकारामजी महाराज ऐसे ही संत थे। एक बार एकादशी की रात्रि को वे अपनी भक्तमण्डली के साथ भजन-कीर्तन में तल्लीन थे। आरती की लौ से मण्डप जलने लगा किन्तु किसीको उसकी खबर तक न पड़ी।

वहाँ से चार कोस की दूरी पर संत शेख मुहम्मद भी खुदा की बंदगी कर रहे थे। शेख मुहम्मद तुकारामजी के मित्र संत थे। 'तुकारामजी महाराज के मण्डप में आग लग गयी है...' यह जानकर शेख मुहम्मद भागे एवं बाल्टियाँ भर-भरकर अपने मण्डप में पानी डालने लगे।

लोगों को आश्चर्य हुआ! उन्होंने पूछा : ''आप यह क्या कर रहे हैं ?''

शेख मुहम्मद : ''मेरे मित्र संत तुकारामजी महाराज भगवान विट्ठल के ध्यान में मग्न हैं और वहाँ के मण्डप को आग ने घेर लिया है जिसे बुझाने के लिये मैं अपने इस मण्डप में पानी डाल रहा हूँ।''

इधर शेख मुहम्मद ने पानी डाला, उधर मण्डप की आग बुझ गयी!

संत तुकारामजी महाराज ईश्वर के ध्यान में तल्लीन थे अतः ईश्वर ने शेख मुहम्मद के द्वारा उनके मण्डप की आग को बुझवा दिया। जो ईश्वर की बंदगी में खोये रहते हैं उनका ऐहिक कार्य ईश्वर स्वयं दूसरों को प्रेरणा देकर पूर्ण करवा देते हैं।

धन्य हैं ऐसे भक्त!

जीवन की संपत्ति : संयम

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

एक बार चैतन्य महाप्रभु (गौरांग) अपने प्रांगण में शिष्यों के साथ श्रीकृष्ण-चर्चा कर रहे थे और चर्चा करते-करते भाव-विभोर हो रहे थे। पास में एक बड़ा वटवृक्ष था... घटादार छाया... मनमोहक वातावरण...

इतने में एक डोली उस वटवृक्ष के नीचे उतरी। उसमें से एक दूल्हा बाहर निकला और विश्राम के लिए वहीं बैठ गया। डोली के साथ बाराती भी थे, वे भी वहीं विश्राम करने लगे। दूल्हे का सुंदर रूप, उसकी विशाल एवं सुडौल काया, बड़ी-बड़ी आँखें एवं आजानुबाहु... देखते ही गौरांग बोल उठे :

''अरे, यह कितना सुंदर है ! कितना बढ़िया लगता है ! लेकिन यह शादी करके आया है। अब यह संसार की चक्की में पिसेगा, भोग-विलास से इसका शरीर क्षीण होगा, दुर्बलकाय बनेगा, विषय-विकारों में खपेगा। संसार की चिन्ताओं में अपना जीवन बिताने की इसकी शुरूआत हो रही है। हे कृष्ण ! यह तेरा भक्त हो जाय तो कितना अच्छा हो !''

वह दूल्हा कोई साधारण आदमी नहीं था वरन् वे बड़े विद्वान् एवं कवि थे। वे कविराज रामचंद्र पण्डित स्वयं थे। उन्होंने गौरांग के ये वचन सुने तो उनके हृदय में तीर की तरह चुभ गये कि : 'बात तो सच है।'

वे घर गये। दो दिन घर में रहे तो उन्हें लगा कि : 'यह तो सचमुच अपने को खपाने-सताने जैसा है।' तीसरे ही दिन वे गौरांग के पास आये एवं उनके चरणों में गिरकर बोले :

''हे संतप्रवर ! मुझे बचाइये। ऐसी सुडौल काया है, कुशाग्र बुद्धि है फिर भी यह जीवन विषय-विलास में ही खपकर बरबाद हो रहा है। अब मेरी जीवन-गाड़ी की बागडोर आप ही सँभालिये।''

गौरांग का हृदय पिघल गया। उन्होंने कविराज रामचंद्र पंडित को गले से लगा लिया। उन्हें गुरुमंत्र की दीक्षा देकर प्राणायाम-ध्यान की विधि बता दी। थोड़े दिन तक वे गौरांग के साथ रहे एवं उनके अंतरंग शिष्य बन गये। ऐसे अंतरंग शिष्य बने कि गौरांग के मन के भाव जानकर अपने-आप ही तत्परता से उनकी सेवा कर लेते थे। गौरांग को इशारा भी नहीं करना पड़ता था। मानों, वे गौरांग की छायारूप हो गये।

एक बार गौरांग कीर्तन करते-करते ऐसी समाधि में चले गये कि एक-दो दिन तो क्या, पूरे सात दिन हो गये, फिर भी उनकी समाधि न टूटी। सब शिष्य एवं विष्णुप्रिया देवी भी चिंतित हो उठीं। आखिर इस सत्शिष्य रामचंद्र से कहा गया :

''अब आप ही कुछ करिये।''

उस वक्त गौरांग भाव-भाव में कृष्णलीला में चले गये थे। विहार करते-करते राधाजी का कुंडल यमुना के गहरे जल में कहीं खो गया था और गौरांग उसे खोजने गये थे। कविराज रामचंद्र गुरुजी पर त्राटक करते हुए उनके ध्यान में तल्लीन हो गये। ध्यान में वे वहीं पहुँच गये जहाँ गौरांग का अंतवाहक शरीर था। अब दोनों मिलकर खोजने लगे। कविराज ने देखा कि राधाजी का कर्णकुंडल किसी लता में फँस गया था। रामचंद्र पंडित ने खोजा एवं दोनों ने राधाजी को अर्पण किया। राधाजी ने अपना चबाया हुआ तांबूल उनको प्रसाद में दिया। वह प्रसाद चबाते हुए जब उनकी आँख खुली तो उसकी सुगंध चिंता में बैठे हुए समस्त भक्तों तक पहुँच गयी।

भक्त दंग रह गये कि जो आनंद एवं सुगंध देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, वह राधाजी के प्रसाद की सुवास में है ! यह कितनी सुखदायी, शांतिदायी है !

संत-सान्निध्य एवं संयम में बड़ी शक्ति होती है। रामचंद्र जा तो रहे थे भोग की खाई में किन्तु गौरांग के वचन सुनकर उनके सान्निध्य में आ गये तो ऐसे महान् हो गये कि राधाजी के कर्णकुण्डल खोजने में अंतवाहक शरीर (सूक्ष्म शरीर) से गौरांग के भी सहायक हो गये ! यौवन, धन एवं सौन्दर्य आदि भोग के सभी साधन एकत्रित थे फिर भी गौरांग की कृपादृष्टि को अपना लिया तो भोग छोड़कर योग के रास्ते चल पड़े रामचंद्र।

संग का बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि संत, सद्गुरु एवं भगवान का संग मिलता है तो वह उन्नति के शिखर पर ले जाता है और यदि दुर्भाग्य से किसी स्वार्थी-दुराचारी का संग मिल जाता है तो बरबादी के रास्ते गहरे गर्त्त में ले जाता है। अतः संग करने में सावधान रहें।

पक्षियों को अपनी जाल में फँसाने के लिये शिकारी जमीन पर दाने बिखेर देता है। जब वे दाने चुगने के लिये उतर आते हैं तब जाल में फँस जाते हैं। फिर छटपटाने लगते हैं। स्वार्थी आदमी कोई अनुग्रह करे तो खतरा है। कोई बदचलन स्त्री या कोई नटी बहुत प्यार करने लगे, नखरे करने लगे तो खतरा है। वह आदमी की जेब और उसके नसों की शक्ति भी खाली कर देगी। घड़ी भर का सुख देगी लेकिन फिर जिन्दगी भर रोते रहो, तुच्छ विकारी आकर्षणों में फँसकर मरते रहो।

आज कल दोस्त भी ऐसे ही मिलते हैं। कहते हैं : ''चलो मित्र ! सिनेमा देखने चलते हैं। मैं खर्च करता हूँ... चल, 'ब्ल्यू फिल्म' देखते हैं।''

दस-बारह साल के लड़के 'ब्ल्यू फिल्म' देखने लग जाते हैं। इससे उनकी मानसिक दुर्दशा ऐसी हो जाती है, वे ऐसी कुचेष्टाओं से ग्रस्त हो जाते हैं कि हम उसे व्यासपीठ पर बोल भी नहीं सकते। वे लड़के बेचारे अपना इतना सर्वनाश कर डालते हैं कि बाप धन, मकान, धन्धा आदि दे जाते हैं फिर भी कोमलवय में चरित्रभ्रष्ट व ऊर्जानाश के कारण वे इन्हें सँभाल नहीं पाते हैं। वे न तो अपना स्वास्थ्य सँभाल पाते हैं, न माता की सेवा कर पाते हैं, न पिता का आदर कर पाते हैं और न ठीक से उनका श्राद्धकर्म कर पाते हैं। अपने ही विकारी सुखों में वे इतना खप जाते हैं कि उनके जीवन में कुछ सत्त्व नहीं बचता। उनको जरा-सा समझाओ तो वे चिढ़ जाते हैं... बोलो तो नाराज हो जाते हैं, घर छोड़कर भाग जाते हैं... डाँटो तो आत्महत्या के विचार करने लगते हैं।

आत्महत्या के विचार आते हैं तो समझो, यह मन की दुर्बलता व कायरता की पराकाष्ठा है। बचपन में वीर्यनाश खूब हुआ हो तो बार-बार आत्महत्या के विचार आते हैं। वीर्यवान् एवं संयमी पुरुष को आत्महत्या के विचार नहीं आते। आत्महत्या के विचार वे ही लोग करते हैं जिनकी वीर्यग्रंथि प्रारम्भ में ही अत्यधिक वीर्यस्राव के कारण मजबूत होने से पहले ही शिथिल एवं कमजोर हो गयी हो। यही कारण है कि हमारे देश की अपेक्षा परदेश में आत्महत्याएँ अधिक होती हैं। हमारे देश में भी पहले की अपेक्षा आज कल आत्महत्याएँ ज्यादा होने लगी हैं क्योंकि फिल्मों के कुप्रभाव से बच्चे-बच्चियाँ वीर्यस्राव आदि के शिकार हो गये हैं।

विद्यार्थियों का धर्म है ब्रह्मचर्य का पालन करना, नासाग्र दृष्टि रखना। पहले के जमाने में पाँच साल का होते ही बालक को गुरुकुल में भेज दिया जाता था। पचीस साल का होने तक वह वहीं रहता था, ब्रह्मचर्य का पालन करता था, विद्याध्ययन एवं योगाभ्यास करता था। जब स्नातक होकर गुरुकुल से वापस आता तब देखो तो शरीर सुडौल एवं मजबूत... कमर में मूँज की रस्सी बँधी हुई और उस रस्सी से लंगोट खींची हुई होती थी। वे जवान बड़े वीर, तंदुरुस्त एवं स्वस्थ होते थे।

उस समय समरांगण में योद्धाओं के बल की तुलना हाथियों के बल से की जाती थी। कई योद्धा हाथियों का बल रखते थे। अभी का इन्सान तो उसे 'गप्प' ही समझता है। विकारी जीवन जी-जीकर उसकी मति इतनी अल्प हो गयी है कि वह उस सत्य को समझ ही नहीं सकता।

अश्लील फिल्मों, गंदे उपन्यासों एवं कुसंग ने आज के नौजवानों के चरित्र-बल का सत्यानाश कर दिया है। सावधान ! इन बुराइयों से बचो, संयम की महिमा समझो एवं संत-महापुरुषों का संग करो

ताकि पुनः अपने पूर्वजों जैसा आत्मबल, चरित्र-बल एवं नैतिक बल अर्जित कर सको।

कविराज रामचंद्र को गौरांग मिल गये, रज्जब को दादू दीनदयाल मिल गये, सलूका-मलूका को कबीरजी मिल गये, नरेन्द्र (स्वामी विवेकानंद) को रामकृष्ण परमहंस मिल गये, शिवाजी को समर्थ रामदास मिल गये तो उनका जीवन कितना ऊँचा, कितना महान् हो गया! अतः तुम भी खोज लो ऐसे किन्हीं महापुरुष को... उनके बताये गये संयम-सदाचार के मार्ग पर चल पड़ो तो तुम्हारा जीवन भी महान् हो उठेगा। उठो... जागो... अब वक्त यूँ ही बिताने के लिये नहीं है। फ्रायड के मनोविज्ञान 'संभोग से समाधि' की पोल खोलो। उसे ठुकरा दो। संयम-सदाचार से समाधि के सुख का अनुभव करो। महानता की महक महकाओ। भगवान पतंजलि व भगवान व्यास का मनोविज्ञान संतों के सत्संग द्वारा समझो। स्वस्थ जीवन, सुखी जीवन व सम्मानित जीवन की सुंदर यात्रा करो।

गौरांग के शिष्य रामचन्द्र की नाईं तुम भी अपनी दिव्यता पा सकते हो, प्रकटा सकते हो। अपने भारत की आन-बान और शान की रक्षा के लिये कटिबद्ध हो जाओ। संतों-महापुरुषों का आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।

अनुभवी मार्गप्रदर्शक सद्गुरु ही शिष्य को माया के दुर्गम पथ से पार कर लक्ष्य स्थान पर ले जाने में समर्थ हैं। ऐसे समर्थ सद्गुरु की जितनी ही पूजा हो, जितना सम्मान हो, जितनी भक्ति की जाय, उतनी ही थोड़ी है क्योंकि ऐसे सद्गुरु का बदला तो कभी चुकाया ही नहीं जा सकता।

ऐसे सद्गुरु का द्रोही नरकगामी न हो तो दूसरा कौन होगा ? ...और ऐसे सद्गुरु की शरण न लेनेवाले से बढ़कर मूर्ख और मन्दभागी भी और कौन होगा ?

- श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार

भारतवासियों ! अब तो जागो...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

मैं तो जापानियों को धन्यवाद दूँगा। वे अमेरिका में जाते हैं तो भी अपनी मातृभाषा में ही बातें करते हैं। ...और हम भारतवासी! भारत में रहते हैं फिर भी अपनी हिन्दी, गुजराती आदि भाषा में अंग्रेजी के शब्द बोलने लगते हैं... आदत पड़ गयी है। ५० वर्ष से अधिक हो गये आजादी के... बाहर की गुलामी की जंजीर तो छूटी लेकिन अंदर की गुलामी, दिमाग की गुलामी अभी तक नहीं गयी।

लॉर्ड मैकाले कहता था : ''मैं यहाँ की शिक्षा-पद्धति में ऐसा कुछ डाल जाता हूँ कि आनेवाले कुछ वर्षों में भारतवासी अपनी संस्कृति से घृणा करेंगे... मंदिर में जाना पसंद नहीं करेंगे... माता-पिता को प्रणाम करने में तौहीनी महसूस करेंगे... वे शरीर से तो भारत के होंगे लेकिन दिलो-दिमाग से हमारे ही गुलाम होंगे... ऐसे संस्कार मैं अपनी इस शिक्षा-पद्धति में डाल जाता हूँ।''

शिक्षा-पद्धति में उसके द्वारा डाले गये संस्कारों का प्रभाव आज भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। हमारे देश के तथाकथित बुद्धिजीवी लोग जो उच्च शिक्षाप्राप्त नागरिक हैं, वे पाश्चात्य जगत की बातों को ज्यादा महत्त्व देते हैं। संत-महापुरुष भारत में रहकर अध्यात्म का प्रसाद बाँटते हैं तो उनकी कोई कीमत नहीं, किन्तु परदेश से होकर आये तो उन्हें लोग ध्यान से सुनने लगते हैं। स्वामी विवेकानंद यहाँ थे तो उनकी कोई कीमत न थी, लेकिन जब विदेश होकर आये तब

उनका जय-जयकार होने लगा। स्वामी रामतीर्थ परदेश होकर आये तो लोग उनका सम्मान करने लगे। हम भी परदेश जाकर आये तो लोग ज्यादा सुनने लगे किन्तु हमारे महान् गुरुदेव को इतने सारे लोग पहचानते भी न थे।

हमारी अपेक्षा तो हमारे गुरुदेव अनंत गुना महान् थे लेकिन उन्होंने प्रचार के साधनों का इतना उपयोग नहीं किया। वे ९३ वर्ष तक भारत में भ्रमण करते रहे लेकिन कइयों को पता तक नहीं था कि पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू जैसी हस्ती इस पृथ्वी पर है। अब भी मैं उनकी वंदना करता हूँ!

परदेश में कोई टोने-टोटके करता हो, धर्मान्तरण कराता हो, फिर अपने देश में आया हो तो पूरे देश की मीडिया उसके पीछे-पीछे धूल चाटती है। यह बात कइयों को कठोर लगती होगी, अप्रिय लगती होगी परन्तु माफ करना, आपको मैं अपना समझकर कहता हूँ।

ऋषि दयानंद ऐसी बातें कहा करते थे इसीलिये लोग उनका खूब विरोध करते थे। उनको कोई हिन्दू अपने धर्मशाला अथवा मंदिर में रहने भी नहीं देता था। फिर भी भारत के उन संत ने सत्य बोलना ज़ारी रखा।

एक बार अलीगढ़ में वे एक मुसलमान के यहाँ ठहरे हुए थे। उसके घर में तो रहते लेकिन अपना भोजन स्वयं बनाकर खाते एवं शाम को 'कुराने शरीफ' पर प्रवचन करते। वे कहते : ''एक तरफ तो बोलते हो कि 'ला इल्लाह इल्लिल्लाह... अल्लाह के सिवाय कोई नहीं है। सबमें अल्लाह हैं, सारा जहाँ अल्लाह का है...' और दूसरी तरफ बोलते हो कि 'हिन्दुओं को मारो-काटो... वे काफिर हैं...' ये कैसे नालायकी के विचार हैं!'' ऐसा करके मुसलमानों को सुना देते। तब मुसलमान भाई विचारते कि : 'ये हिन्दू बाबा हमारे 'कुराने शरीफ' की आयतें एवं इसके दृष्टांत देकर हमको ही ऐसा-वैसा सुना देते हैं ? ऐसा क्यों ? आखिर रहते कहाँ हैं ?'

जाँच की तो पता चला कि इन बाबा को हिन्दू लोग अपने यहाँ रखने से इन्कार करते हैं किन्तु इनका एक मुसलमान भक्त जिसे हिन्दू धर्म की महिमा का पता है उसके घर ये रहते हैं। तब गाँव के आगेवानों ने मिलकर कहा :

''स्वामीजी ! आपको अपनेवाले अपनी धर्मशाला और मंदिरों में रहने तक नहीं देते हैं। आप एक मुसलमान के घर रहते हैं और मुसलमानों को ही सुनाते हैं! थोड़ा तो ख्याल करें!''

उन निर्भीक बाबा ने क्या कहा, जानते हो ?

उन्होंने कहा : ''जिनके यहाँ रहता हूँ उनको अगर सत्य सुनाकर उनकी गलती नहीं निकालूँगा तो फिर और किसको सत्य सुनाऊँगा ?''

उनके ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में देखना। अमुक पंथ में कोई साधु मर गया हो तो उसे कुएँ में डाल देते हैं और कहते हैं कि 'उसे तो फलाने स्वामी ले गये।' ऋषि दयानंद ने स्पष्ट लिखा है कि : ''अमुक स्वामी (सहजानंद) ले गये- इस धूर्तता में फँसने की जरूरत नहीं है।''

ऐसा स्पष्ट सत्य सुनानेवाले संत को लोगों ने २२-२२ बार जहर दिया! उन्हीं महापुरुष को जब अंतिम बार जहर दिया गया तो उन्होंने जहर पिलानेवाले को कहा : ''ये पैसे ले और भाग जा। भक्तों को पता चलेगा तो तुझे मार डालेंगे।''

ऐसे-ऐसे महापुरुष हो गये हैं हमारी संस्कृति में। उन्हें पोप जैसा सम्मान तो क्या मिला ? बल्कि निन्दक लोग उनका नाम गधे पर लिखकर उनका मखौल उड़ाते कि : 'ऋषि दयानंद गधे हैं।' उनके भक्त लोग आकर उन्हें बताते कि : 'आपके लिये कुछ लोग ऐसा-वैसा लिखते हैं।' तब दयानंदजी कहते : ''हाँ, जो ढोंगी है वह गधा ही है। तुम घबराओ मत, विरोध न करो। तुम आगे बढ़ो।''

कितनी सहनशक्ति थी उन महापुरुष में!

वैष्णवजन तो तेने रे कहीए, जे पीड़ पराई जाणे रे।
परदुःखे उपकार करे तोय, मन अभिमान न आणे रे॥

बिल्खा में नथुराम शर्मा नाम के एक उच्च कोटि के आत्मज्ञानी संत हो गये। लोगों को उनके बारे में कुछ पता ही नहीं था। उन्हीं की 'पंचदशी' मुझसे पढ़वाकर मेरे गुरुदेव ने मुझ पर संकल्प डाला एवं उस 'पंचदशी' का प्रसंग समझाकर जीव-ब्रह्म की

एकता का साक्षात्कार करवा दिया। ऐसे महापुरुषों को लोग पहचानते तक नहीं हैं। राष्ट्र के तो कई बड़े शहरों में लोगों को पता तक नहीं चल पाता कि ऐसे उच्च कोटि के संत-महात्मा आये हैं किन्तु जो अमुक के पास से पैसे ले-लेकर, अमुक को प्रलोभन दे-देकर धर्मान्तरण करवाते हैं उनके लिये चारों ओर जय-जयकार बुलवाया जाता है। फिर भी एक बात की मुझे प्रसन्नता है कि अभी तक भारतीय संस्कृति का ज्ञान, उसकी साधना-पद्धति लोगों को सुख-शांति देने का सामर्थ्य अपने भीतर संजोयी हुई है। उसकी गरिमा को समझकर हम पुनः भारत की प्राचीन महानता को प्राप्त कर सकते हैं।

क्या अपने ही देश में हम सौतेले ?

आचार्य विनोबा भावे ने कहा है :

"जिस देश से उसकी अपनी संस्कृति या राष्ट्रीयता नष्ट कर दी जाती है, वह राष्ट्र नष्ट हो जाता है।"

धर्म, दर्शन, कला, भाषा-साहित्य, रहन-सहन, चिकित्सा-प्रणाली आदि के माध्यम से ही किसी भी संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है।

एक महिला गरीबों में कुछ बाँटकर उस पर फिल्में बनवाती है और विदेशों में बताती है कि : 'भारत गरीब है, कंगाल है... कुछ दो।' वह करोड़ों रूपये लाती है, धर्मान्तरण करवाती है तो उसे राष्ट्रीय सम्मान मिलते हैं। जबकि हमारे ही देश में रखुमाई जैसी नारी आचार्य विनोबा भावे जैसे संत-पुरुष को जन्म देती है, गरीबों को मदद करती है... और भी हजारों बहनें गरीबों में अन्न-वस्त्र-दवाइयाँ आदि जीवनोपयोगी वस्तुएँ बाँटती हैं, मानव-समाज की सेवा करती हैं लेकिन उन्हें राष्ट्रीय सम्मान तो क्या, यदि कीर्तन-यात्राएँ निकालना चाहें तो भी आदेश लेने में दम निकल जाता है। अपने ही देश में हम सौतेले हो गये हैं ऐसा लगता है।

मैं उन गुरुदेव को नमस्कार करता हूँ जो संसाररूप हाथी के लिए सिंह के समान हैं, जो संसार में तथा एकान्त में समदृष्टि से सदा-सर्वदा पूर्ण बने रहनेवाले हैं, जिनकी कृपा से साधकों को देह में रहते हुए भी देह दिखाई नहीं पड़ती तथा संसाररूप अन्धड़ देखते-देखते समाप्त हो जाता है, जिनके कृपाकटाक्ष से अलक्ष वस्तु बिना लक्ष्य के लक्षित हो जाती है तथा साक्षीभाव विस्मरण हो जाता है।

उन्होंने बिना प्राणों के ही जीवनदान दिया, बिना मारे ही मृत्यु को मार दिया, मेरी चर्मदृष्टि को लेकर अदृश्य दिखा दिया तथा मेरे सारे शरीर में ही दर्शन करने की क्षमता उत्पन्न कर दी। मेरे देह में रहते हुए मुझे विदेही कर दिया और अन्त में वह विदेहीपन भी समाप्त कर दिया और फिर विदेही होना न होना दोनों ही समाप्त होकर जो था वही शेष बच गया। भाव के साथ अभाव नष्ट हो गया, निःसन्देहता के साथ सन्देह भी निकल गया, विस्मय विस्मय में ही डूब गया तथा स्वानन्द को भी पागलपन की अवस्था प्राप्त हो गयी। मैं वहाँ प्रेम के कारण ही भक्त बना था लेकिन उस भक्ति में ही मुझे देव की उपस्थिति दिखलाई पड़ी। अतः भज्य, भजक और भजन इनका अन्त मुझे दिखाई पड़ने लगा। नमन में ही नमस्कार किया तथा नमस्कार करनेवाला कहाँ गया, यह भी समझ में नहीं आया। जिसे नमस्कार करना चाहिए वह वस्तु भी अदृश्य हो जाने पर मैं स्वतः तद्रूप बन गया। दृश्य और द्रष्टा इन दोनों को एक साथ ही मरण प्राप्त हुआ तथा नेत्रों को समाप्त करके दर्शन भी समाप्त हो गया। अब इधर-उधर केवल देव ही

देव व्याप्त हो गये। अतः भक्त भाव को भूल गया और देव भी देव स्वभाव भूलकर देवत्व को छोड़ बैठे। सर्वत्र देवस्वरूप भरा होने के कारण भक्तस्वरूप देव में ही मिल गया तथा देव व भक्त दोनों के बीच में अभेदभाव स्थापित होकर एकमात्र अनन्त स्वरूप ही शेष बच गया।

त्याग के सहित अत्याग लय हो गया, भोग के साथ अभोग उड़ गया, योग के साथ अयोग डूब गया तथा योग्यता का अहंभाव भी समाप्त हो गया। ऐसा होते हुए भी एक विशेष बात यह है कि सायुज्य स्थिति में जो दासभाव बनाए रखता है उसका आनंद-रस अतर्क्य और अविनाशी होता है। **'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्...'** इसी अवस्था का द्योतक है। इस अवस्था को प्राप्त हुए बिना केवल बोलना ही रहता है। ऐसे बोलने से स्वरूप का भजन प्राप्त होनेवाला नहीं है। इस अभेदभाव के सुख में नारद भी आनंद से गाते व नाचते हैं। शुक-सनकादि जो सभी स्वस्वरूप के भक्त हुए हैं वे इसी सुख के कारण हुए हैं।

जिस प्रकार सागर में ज्वार आने पर सागर का जल खाड़ियों में भर जाता है, उसी प्रकार देव ने मुझे निजभक्त बना डाला है। समुद्र व नदी इन दोनों का जल एक ही होता है लेकिन जिस स्थान पर इनका संगम होता है उस स्थान की शोभा कुछ विशेष ही होती है। इसलिए ऐक्यरूप से परमेश्वर के भजन का सुख दुगुना हो जाता है। शरीर के दायें और बायें अंग अलग-अलग कहे जाते हैं, पर इन दोनों से बोध एक ही शरीर का होता है, उसी प्रकार देव और भक्त में ऐसा भेद दिखाई पड़ने पर भी देवपन में दोनों को ऐक्य ही स्पष्ट अनुभव में आता है। मेरे गुरुदेव जनार्दन स्वामी ने मुझे अपनेपन का मान देकर अद्वैतभक्त बना डाला तथापि काया, वाचा और मन से सर्व प्रकार से प्रेरणा करके वे ही मुझसे सब व्यवहार करवाते हैं। वे ही जनार्दन मेरे मुख के मुख बन गये हैं। मेरी दृष्टि के सम्मुख मूर्तिमन्त होकर वे ही खड़े रहते हैं। उनका कौतुक बड़ा विलक्षण है।

श्री एकनाथजी महाराज सद्गुरुकृपा से कृतकृत्य हुए। अपने हृदय की कृतकृत्यता का वर्णन गुरु-स्तुति के रूप में करते हुए वे कहते हैं :

''हे चित्स्वरूप सद्गुरुराज ! आपको नमस्कार है...' ऐसा कहकर जैसे ही मैंने सद्भाव से आपके श्रीचरणों में नमस्कार किया वैसे ही आपने 'तू' पन निकालकर मेरा 'मैं' पन नष्ट कर दिया। आपके श्रीचरणों की कठोरता कितनी अपूर्व है कि जीव का जो लिंगदेह वज्र से भी नहीं टूट सकता, उसी को आपने अपने चरणस्पर्श मात्र से विदीर्ण कर डाला। बलि ने आपके केवल श्रीचरणों का स्पर्श किया था, उसको भी आपने पाताल में पहुँचा दिया। महाबली लवणासुर को भी अपने श्रीचरणों से नष्ट कर दिया। आपके श्रीचरण वास्तव में अत्यंत तीखे हैं। आपके श्रीचरणों का स्पर्श कालियनाग को होते ही उसके सारे विष का शोषण हो गया और वह पूर्ण रूप से निर्विष बन गया। आपके कठिन श्रीचरणों का स्पर्श शकटासुर को मिलते ही उसके सारे पाप-बन्ध टूट गये और उसका जन्म-मरण ही छूट गया। बड़े-बड़े बलवान् भी आपके श्रीचरणों की धाक मानते हैं। शिला बनकर पड़ी हुई अहिल्या का उद्धार आपने अपने श्रीचरणों से ही किया। दानशूर नृग राजा गिरगिट बनकर पड़े हुए थे। कृष्णावतार में आपके श्रीचरणों का दर्शन होते ही वे नृगराज भी मिथ्या संसार के जन्म-मरण से छूट गये। जो दास प्रेम से आपके श्रीचरणों का चिन्तन करते हैं, उनका मनुष्य-धर्म ही समाप्त हो जाता है। यमलोक उजाड़ हो जाता है तथा उन्हीं श्रीचरणों से जीव का जीवपन समाप्त हो जाता है। आपके श्रीचरणों का तीर्थ शंकरजी ने अपने मस्तक पर धारण किया तो वे जगत के प्राणहरण करनेवाले बन गये तथा उसकी राख को बड़े भक्तिभाव से अपने अंगों में लगाकर नग्न हो स्मशान में विचरण करने लगे। आपके श्रीचरणों की करनी ही ऐसी है। वह जब शिव का शिवपना ही नहीं रहने देती तो जीव का जीवपना रह ही कैसे सकता है ?

[*श्री एकनाथी भागवत के ११ वें स्कन्ध से*]

निन्दकों से सावधान !

संसार के अज्ञान-अन्धकार को मिटाने के लिये संतरूपी चिराग अपने आपको जलाकर प्रकाश देता है जबकि संसारियों की टीका-टिप्पणी, निन्दा, गलत चर्चाएँ तथा अन्यायी व्यवहाररूपी आँधियाँ उस प्रकाश को बुझाने के लिये दौड़ पड़ती हैं। स्वामी विवेकानंद, भगिनी निवेदिता, महात्मा गाँधी तथा उनकी सहयोगी समाजसेवी महिलाओं को भी निन्दकों ने अपना शिकार बनाया था। अभी-अभी कुछ समय पूर्व एक संत के विरुद्ध आरोपों की आँधी उमड़ पड़ी थी।

असामाजिक तत्त्व अपने विभिन्न षड्यंत्रों द्वारा संतो-महापुरुषों के भक्तों व उनके दैवी कार्यों में सहयोगी सेवकों को गुमराह करने की कुचेष्टाएँ करते रहते हैं। उन महापुरुषों के दिव्य जीवन से परिचित समझदार साधक या भक्त इन तत्त्वों से विचलित नहीं होते अपितु सश्रद्ध और अधिक सक्रिय व गतिशील होकर उनके दैवी कार्यों में लग जाते हैं। परन्तु साधनाक्षेत्र के नवपथिकों को पथभ्रष्ट होने का खतरा बना रहता है साथ-साथ समाज भी संतों के ज्ञान-प्रकाश से वंचित रह जाता है, जिससे उसके उन्नति पथ में बाधा पहुँचती है। अतः निन्दकों से सावधान ! ये निन्दक समाज और देश के लिये अति हानिकारक हैं।

इसीलिए संत कबीरजी कहते हैं :

कबीरा निन्दक ना मिलो, पापी मिलो हजार।
एक निन्दक के माथे पर, लाख पापिन को भार॥

तुलसीदासजी संतों की निंदा सुननेमात्र के पाप तथा निन्दक की गति इस प्रकार बतलाते हैं :

हरि गुरु निन्दा सुनहिं जे काना होहिं पाप गौ घात समाना।
हरि गुरु निन्दक दादुर होई जन्म सहस्र पाव तन सोई॥

संत संस्कृति के रक्षक तथा समाज के सच्चे पथप्रदर्शक होते हैं और जिस देश में ऐसे संतों का अनादर होता है उस देश को इसका मूल्य अपनी संस्कृति को खोकर अपने आपको नष्ट करके अथवा स्वयं को पराधीन होकर चुकाना पड़ता है।

अतः देश के सभी पत्रकार व पत्र-पत्रिकाओं को सत्य के पक्षधर होकर देशसेवा करनी चाहिये। राष्ट्रहित सर्वोपरि है।

एकादशी माहात्म्य

[पापमोचनी एकादशी : २० मार्च २००१]

महाराज युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से चैत्र (गुजरात-महाराष्ट्र के मुताबिक फाल्गुन) मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी के बारे में जानने की इच्छा प्रकट की तो वे बोले : ''राजेन्द्र ! मैं तुम्हें इस विषय में एक पापनाशक उपाख्यान सुनाऊँगा, जिसे चक्रवर्ती नरेश मान्धाता के पूछने पर महर्षि लोमश ने कहा था।

मान्धाता ने पूछा : 'भगवन् ! मैं लोगों के हित की इच्छा से यह सुनना चाहता हूँ कि चैत्र मास के कृष्ण पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है, उसकी क्या विधि है तथा उससे किस फल की प्राप्ति होती है। कृपया ये सब बातें मुझे बताइए।'

लोमशजी ने कहा : 'नृपश्रेष्ठ ! पूर्वकाल की बात है। अप्सराओं से सेवित चैत्ररथ नामक वन में, जहाँ गन्धर्वों की कन्याएँ अपने किंकरों के साथ बाजे बजाती हुई विहार करती हैं, मंजुघोषा नामक अप्सरा मुनिवर मेधावी को मोहित करने के लिये गयी। वे महर्षि चैत्ररथ वन में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। मंजुघोषा मुनि के भय से आश्रम से एक कोस दूर ही ठहर गयी और सुन्दर ढंग से वीणा बजाती हुई मधुर गीत गाने लगी। मुनिश्रेष्ठ मेधावी घूमते हुए उधर जा निकले और उस सुन्दर अप्सरा को इस प्रकार गान करते देख बरबस ही मोह के वशीभूत हो गये। मुनि की ऐसी अवस्था देख मंजुघोषा उनके समीप आयी और वीणा नीचे रखकर उनका आलिंगन करने लगी। मेधावी भी उसके साथ रमण करने लगे। रात और दिन का भी उन्हें भान न रहा। इस प्रकार उन्हें बहुत दिन व्यतीत हो गये। मंजुघोषा देवलोक में जाने को तैयार हुई। जाते समय उसने मुनिश्रेष्ठ मेधावी से कहा : 'ब्रह्मन् ! अब मुझे अपने देश जाने की आज्ञा दीजिए।'

मेधावी बोले : 'देवी ! जब तक सबेरे की सन्ध्या न हो

जाय तब तक मेरे ही पास ठहरो।'

अप्सरा ने कहा : 'विप्रवर ! अब तक न जाने कितनी ही सन्ध्याएँ चली गयीं ! मुझ पर कृपा करके बीते हुए समय का विचार तो कीजिए !'

लोमशजी कहते हैं : 'राजन् ! अप्सरा की बात सुनकर मेधावी चकित हो उठे। उस समय उन्होंने बीते हुए समय का हिसाब लगाया तो मालूम हुआ कि उसके साथ रहते हुए उन्हें सत्तावन वर्ष हो गये। उसे अपनी तपस्या का विनाश करनेवाली जानकर मुनि को उस पर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने शाप देते हुए कहा : 'पापिनी ! तू पिशाची हो जा।' मुनि के शाप से दग्ध होकर वह विनय से नतमस्तक हो बोली : 'विप्रवर ! मेरे शाप का उद्धार कीजिए। सात वाक्य बोलने या सात पद साथ-साथ चलने मात्र से ही सत्पुरुषों के साथ मैत्री हो जाती है। ब्रह्मन् ! मैंने तो आपके साथ अनेक वर्ष व्यतीत किये हैं, अतः स्वामिन् ! मुझ पर कृपा कीजिये।'

मुनि बोले : 'भद्रे ! क्या करूँ ? तुमने मेरी बहुत बड़ी तपस्या नष्ट कर डाली है। फिर भी सुनो। चैत्र कृष्ण पक्ष में जो शुभ एकादशी आती है उसका नाम है 'पापमोचनी'। वह शाप से उद्धार करनेवाली तथा सब पापों का क्षय करनेवाली है। सुन्दरी ! उसी का व्रत करने पर तुम्हारी पिशाचता दूर होगी।'

ऐसा कहकर मेधावी अपने पिता मुनिवर च्यवन के आश्रम पर गये। उन्हें आया देख च्यवन ने पूछा : 'बेटा ! यह क्या किया ? तुमने तो अपने पुण्य का नाश कर डाला !'

मेधावी बोले : 'पिताजी ! मैंने अप्सरा के साथ रमण करने का पातक किया है। अब आप ही कोई ऐसा प्रायश्चित्त बताइये, जिससे पातक का नाश हो जाय।'

च्यवन ने कहा : 'बेटा ! चैत्र कृष्ण पक्ष में जो पापमोचनी एकादशी आती है, उसका व्रत करने पर पापराशि का विनाश हो जायेगा।'

पिता का यह कथन सुनकर मेधावी ने उस व्रत का अनुष्ठान किया। इससे उनका पाप नष्ट हो गया और वे पुनः तपस्या से परिपूर्ण हो गये। इसी प्रकार मंजुघोषा ने भी इस उत्तम व्रत का पालन किया। 'पापमोचनी' का व्रत करने के कारण वह पिशाच-योनि से मुक्त हुई और दिव्य रूपधारिणी श्रेष्ठ अप्सरा होकर स्वर्गलोक में चली गयी।

राजन् ! जो श्रेष्ठ मनुष्य पापमोचनी एकादशी का व्रत करते हैं उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इसको पढ़ने और सुनने से सहस्र गोदान का फल मिलता है। ब्रह्महत्या, सुवर्ण की चोरी, सुरापान और गुरुपत्नीगमन करनेवाले महापातकी भी इस व्रत को करने से पापमुक्त हो जाते हैं। यह व्रत बहुत पुण्यमय है। [*'पद्म पुराण' से*]

निद्रा और स्वास्थ्य

जब आँख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियाँ और हाथ-पैर आदि कर्मेन्द्रियाँ तथा मन अपने-अपने कार्यों में रत रहने के कारण थक जाते हैं तब नींद स्वाभाविक ही आ जाती है। जो लोग नियत समय पर सोते और उठते हैं, उनकी शारीरिक शक्ति में ठीक से वृद्धि होती है। पाचकाग्नि प्रदीप्त होती है जिससे शरीर की धातुओं का निर्माण उचित ढंग से होता रहता है। उनका मन दिन भर उत्साह से भरा रहता है जिससे वे अपने सभी कार्य तत्परता से कर सकते हैं।

रात्रि के प्रथम प्रहर में सो जाना और ब्राह्ममुहूर्त में उठना स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हितकर है।

अच्छी नींद के लिए रात्रि का भोजन अल्प तथा सुपाच्य होना चाहिए। सोने से दो घंटे पहले भोजन कर लेना चाहिए। भोजन के बाद स्वच्छ, पवित्र तथा विस्तृत स्थान में अच्छे, अविषम एवं घुटनों तक के ऊँचाईवाले शयनासन पर पूर्व या दक्षिण की ओर सिर करके प्रसन्न मन से ईश्वरचिंतन करते-करते सो जाना चाहिए। शयन से पूर्व प्रार्थना करने पर मानसिक शांति मिलती है एवं नसों में शिथिलता उत्पन्न होती है। इससे स्नायविक तथा मानसिक रोगों से बचाव व छुटकारा मिलता है। यह नियम अनिद्रा रोग एवं दुःस्वप्नों से भी बचाता है। यथाकाल निद्रा के सेवन से शरीर की पुष्टि होती है तथा बल और उत्साह-चैतन्य की प्राप्ति होती है।

निद्रानाश के कारण :

कुछ कारणों से हमें रात्रि में नींद नहीं आती। कभी-कभी थोड़ी-बहुत नींद आ भी गयी तो आँख तुरन्त खुल जाती है। वात-पित्त की वृद्धि होने पर अथवा फेफड़े, सिर, जठर आदि शरीरांगों से कफ का अंश क्षीण होने के कारण वायु की वृद्धि होने पर अथवा अति परिश्रम के कारण थक जाने से अथवा क्रोध, शोक, भय से मन व्यथित होने पर नींद नहीं आती या कम आती है।

निद्रानाश के परिणाम :

निद्रानाश से बदनदर्द, सिर में भारीपन, जड़ता, ग्लानि, भ्रम, अन्न का न पचना एवं वातजन्य रोग पैदा होते हैं।

निद्रानाश से बचने के उपाय :

(१) शंखपुष्पी और जटामांसी का १ चम्मच सम्मिश्रित चूर्ण सोने से पहले दूध के साथ लेना। (२) अपने शारीरिक बल से अधिक परिश्रम न करना। (३) ब्राह्मी, आँवला, भांगरा आदि शीत द्रव्यों से सिद्ध तेल सिर पर लगाना। (४) **'शुद्धे-शुद्धे महायोगिनी महानिद्रे स्वाहा।'** इस मंत्र का जप १० मिनट या अधिक करने से अनिद्रा निवृत्त होगी व नींद अच्छी आयेगी।

रात्रि का जागरण रुक्षताकारक एवं वायुवर्धक होता है। दिन में सोने से कफ बढ़ता है और पाचकाग्नि मंद हो जाती है जिससे अन्न का पाचन ठीक से नहीं होता। इससे पेट की अनेक प्रकार की बीमारियाँ होती हैं तथा त्वचा-विकार, मधुमेह, दमा, संधिवात आदि अनेक विकार होने की संभावना होती है। बहुत से व्यक्ति दिन और रात दोनों काल में खूब सोते हैं। इससे शरीर में शिथिलता आ जाती है। शरीर में सूजन, मलावरोध, आलस्य तथा कार्य में निरुत्साह आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

अतः दिन में सोनेवाले सावधान ! मंदाग्नि और कफवृद्धि करके कफजनित रोगों को न बुलाओ। रात की नींद ठीक से लो। दिन में सोकर स्वास्थ्य बिगाड़ने की आदत बन्द करो-कराओ। नन्हें-मासूमों को, रात्रि में जागनेवालों को, कमजोर व बिमारों को और जिनको वैद्य बताते हैं उनको दिन में सोने की आवश्यकता हो तो उचित है।

अति निद्रा की चिकित्सा :

(१) उपवास अथवा हल्का, सुपाच्य एवं अल्प आहार से नींद अधिक नहीं आती। (२) सुबह-शाम १०-१० प्राणायाम करना भी हितकारी है। (३) नेत्रों में अंजन करने से तथा आधी चुटकी वचा चूर्ण (घोड़ावज) का नस्य लेने से नींद का आवेग कम होता है। इस प्रयोग से मस्तिष्क में कफ और बुद्धि पर जो तमोगुण का आवरण होता है, वह दूर हो जाता है।

स्वास्थ्य पर विचारों का प्रभाव :

विचारों की उत्पत्ति में हमारी दिनचर्या, वातावरण, सामाजिक स्थिति आदि विभिन्न तथ्यों का असर पड़ता है। अतः दैनिक जीवन में विचारों का बड़ा ही महत्त्व होता है। कई बार हम केवल अपने दुर्बल विचारों के कारण रोगग्रस्त हो जाते हैं और कई बार साधारण-से रोग की स्थिति भयंकर रोग की कल्पना से अधिक बिगड़ जाती है और कई बार डॉक्टर डरा देते हैं। कमीशन की लालच व अंधे स्वार्थ में आकर वे बिनजरूरी मशीनों से 'चेकअप' व ऑपरेशन-इंजेक्शनों के घाट उतार देते हैं। यदि हमारे विचार अच्छे हैं, दृढ़ हैं तो हम स्वास्थ्य-संबंधी नियमों का पालन करेंगे और साधारण रोग होने पर योग्य विचारों से ही हम उससे मुक्ति पाने में समर्थ हो सकेंगे।

सात्त्विक विचारों की उत्पत्ति में सात्त्विक आहार, सत्शास्त्रों का पठन, महात्माओं के जीवन-चरित्रों का अध्ययन, ईश्वरचिन्तन, भगवन्नाम-स्मरण, योगासन और ब्रह्मचर्य-पालन बड़ी सहायता करते हैं।

'श्रीरामचरितमानस' में आता है :

सद्गुर बैद बचन बिस्वासा। संयम यह न बिषय कै आसा॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

सद्गुरुरूपी वैद्य के वचन में विश्वास हो। विषयों की आशा न करे, यही संयम (परहेज) हो। श्रीरघुनाथजी की भक्ति संजीवनी जड़ी है। श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान (दवा के साथ लिया जानेवाला मधु आदि) है। इस प्रकार का संयोग हो तो वे रोग भले ही नष्ट हो जायँ, नहीं तो करोड़ों प्रयत्नों से भी नहीं जाते। (श्रीरामचरितमानस० उ. का० : १२१.३-४)

*

वसंत ऋतुचर्या

वसंत ऋतु संधिकाल की ऋतु है। इन दिनों में चर्मरोग, सर्दी, जुकाम, खाँसी, बुखार, सिरदर्द, कृमि आदि रोग होते हैं। इस ऋतु में शीत ऋतु की तरह भारी, खट्टे, ठंडे व मधुर रसवाले पदार्थों का सेवन न करें। आइसक्रीम, ठंडे पेय पदार्थ, मावे से बनी मिठाइयाँ, केले, संतरा आदि कफवर्धक फल न खायें। आँवला, शहद, मूंग, अदरक, परवल, दालचिनी, धानी, चना, मुरमुरा आदि कफनिवारक पदार्थों का सेवन करना चाहिये।

चैत्र माह में नीम के नये पत्ते खाने की बड़ी महिमा है। १४ दिन सुबह १०-१५ कोमल पत्ते खूब चबा-चबाकर खाने से या उसका रस निकालकर पीने से शरीर में रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है तथा चर्मरोग, रक्तविकार, ज्वर और अन्य कफ व पित्तदोष के रोग नहीं होते।

शरीर से जहरीले हानिकारक द्रव्यों को निकालने के लिए इस ऋतु में २ से ५ ग्राम हरड़ व शहद सममात्रा में नित्य प्रातः लेना चाहिए। इस ऋतु में सूर्योदय से पहले उठना, व्यायाम, दौड़, तेज चलना, रस्सीकूद, प्राणायाम, आसन अधिक हितकारी है।

*

उपवास : विषय-वासना निवृत्ति का अचूक साधन

अन्न में मादकता होती है। इसमें भी एक प्रकार का नशा होता है। भोजन करने के तत्काल बाद आलस्य के रूप में इस नशे का प्रायः सभी लोग अनुभव करते हैं। पके हुए अन्न के नशे में एक प्रकार की पार्थिव शक्ति निहित होती है, जो पार्थिव शरीर का संयोग पाकर दुगुनी हो जाती है। इस शक्ति को शास्त्रकारों ने 'आधिभौतिक शक्ति' कहा है।

इस शक्ति की प्रबलता में वह 'आध्यात्मिक शक्ति' जो हम पूजा-उपासना के माध्यम से एकत्र करना चाहते हैं, नष्ट हो जाती है। अतः भारतीय महर्षियों ने सम्पूर्ण आध्यात्मिक अनुष्ठानों में उपवास का प्रथम स्थान रखा है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।

गीता के अनुसार उपवास, विषय-वासना से निवृत्ति का अचूक साधन है। खाली पेट को फालतू की 'मटरगस्ती' नहीं सूझती। अतः शरीर, इन्द्रियों और मन पर विजय पाने के लिये 'जितासन' और 'जिताहार' होने की परम आवश्यकता है।

आयुर्वेद तथा आज का विज्ञान दोनों का एक ही निष्कर्ष है कि व्रत और उपवासों से जहाँ अनेक शारीरिक व्याधियाँ समूल नष्ट हो जाती हैं, वहाँ मानसिक व्याधियों के शमन का भी यह एक अमोघ उपाय है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि सप्ताह में एक दिन तो व्रत रखना ही चाहिए। इससे आमाशय, यकृत एवं पाचनतंत्र को विश्राम मिलता है तथा उनकी स्वतः ही सफाई हो जाती है। इस रासायनिक प्रक्रिया से पाचनतंत्र मजबूत हो जाता है तथा व्यक्ति की आन्तरिक शक्ति के साथ-साथ उसकी आयु भी बढ़ती है।

[*धन्वन्तरि आरोग्य केन्द्र, साबरमती, अमदावाद।*]

*

गोदुग्ध पृथ्वी का अमृत क्यों ?

भारतीय नस्ल की गाय की रीढ़ में सूर्यकेतु नामक एक विशेष नाड़ी होती है। जब इस नाड़ी पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं तब यह नाड़ी किरणों से सुवर्ण के सूक्ष्म कणों का निर्माण करती है। इसीलिए गाय के दूध, मक्खन तथा घी में पीलापन रहता है। यह पीलापन शरीर में उपस्थित विष को समाप्त अथवा बेअसर करने में लाभदायी सिद्ध होता है। गोदुग्ध का नित्य सेवन दवाओं के दुष्प्रभाव (साइड इफेक्ट) से उत्पन्न विष का भी शमन करता है।

गोदुग्ध में प्रोटीन की इकाई 'अमीनो एसिड' की प्रचुर मात्रा होने से यह सुपाच्य तथा चर्बी की मात्रा कम होने से 'कोलेस्टरॉल' रहित होता है।

गाय के दूध में उपस्थित 'सेरीब्रोसाइड्स' मस्तिष्क को ताजा रखने एवं बौद्धिक क्षमता बढ़ाने के लिए उत्तम टॉनिक का निर्माण करते हैं।

रूस के वैज्ञानिक गाय के दूध को आण्विक विस्फोट से उत्पन्न विष को शमन करनेवाला मानते हैं।

कारनेल विश्वविद्यालय में पशुविज्ञान विशेषज्ञ प्रोफेसर रोनाल्ड गोरायटे के अनुसार गाय के दूध में MDGI प्रोटीन होने से शरीर की कोशिकाएँ कैंसरयुक्त होने से बचती हैं।

गोदुग्ध पर अनेक देशों में और भी नये-नये परीक्षण हो रहे हैं तथा सभी परीक्षणों से इसकी नवीन विशेषताएँ प्रगट हो रही हैं। धीरे-धीरे वैज्ञानिकों की समझ में आ रहा है कि भारतीय ऋषियों ने गाय को माता, अवध्य तथा पूजनीय क्यों कहा है।

'ऋषि प्रसाद' सेवाधारियों के लिए स्वर्णिम अवसर

'ऋषि प्रसाद' के माध्यम से अपने पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी को घर-घर तक पहुँचाने का जो पुनीत कार्य आप कर रहे हैं उससे समाज व राष्ट्र को कितना लाभ हो रहा है यह लाबयान है। इसके प्रचार-प्रसार से कितने ही घर बरबाद होने से बच गये, कितने ही लोगों की डूबती जीवन-नैया किनारे लग गयी, आपराधिक किस्म के लोग सदाचारी व समाज-सेवी हो गये, नास्तिक आस्तिक हो गये, पतन की राह जानेवाले नैतिक-आध्यात्मिक उन्नति की ओर चल पड़े, आलसी-प्रमादी एवं पलायनवादी लोग कर्मनिष्ठ बन गये अर्थात् कुल मिलाकर लाखों-लाखों परिवारों के साथ-साथ समाज एवं राष्ट्र का अभ्युत्थान हो रहा है। व्यक्ति की उन्नति में समाज की उन्नति और समाज की उन्नति में राष्ट्रकी उन्नति निहित है। इस प्रकार आप गुरुभक्ति एवं गुरुसेवा के साथ-साथ राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रसेवा एवं समाजसेवा का अमित पुण्यलाभ भी घर बैठे ले रहे हैं।

यद्यपि 'ऋषि प्रसाद' आज सोलह लाख से भी अधिक प्रतियाँ छपने का उच्चांक प्राप्त कर चुकी है लेकिन पूज्यश्री के संदेश को हमें अभी करोड़ों लोगों तक पहुँचाना है... गुमराह एवं भूले-भटके लोगों तक शीघ्रातिशीघ्र पहुँचना है ताकि उनका भी जीवन सुखमय, समृद्धमय एवं उन्नत हो।

वे साधक धनभागी हैं जो सांसारिक कार्यों से समय निकालकर ईश्वर एवं गुरु की प्रसन्नता हेतु जन-जागृति के दैवी कार्य में उत्साह एवं तत्परतापूर्वक लगे रहते हैं। यह दैवी कार्य और भी अधिक तीव्र गति से आगे बढ़े, यही प्रार्थना!

'ऋषि प्रसाद' स्वर्ण पदक प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'ऋषि प्रसाद' के सभी सन्निष्ठ व तत्पर सेवादारों को उनके द्वारा बनाये गये सदस्यों की संख्या के अनुसार पाँच श्रेणियों में सम्मानित व पुरस्कृत किया जायेगा।

प्रथम श्रेणी : ११ हजार से ज्यादा सदस्य संख्या
द्वितीय श्रेणी : ५००१ से ११००० तक सदस्य संख्या
तृतीय श्रेणी : १००१ से ५००० तक सदस्य संख्या
चतुर्थ श्रेणी : ५०१ से १००० तक सदस्य संख्या
पंचम श्रेणी : ३०० से ५०० तक सदस्य संख्या

नोट : प्रतियोगिता में भाग लेनेवाले नये सेवादार अपना सेवादार क्रमांक व रसीद बुकें अहमदाबाद आश्रम से प्राप्त कर सकते हैं।

पूज्य गुरुदेव द्वारा जीवनदान

यह घटना अगस्त १९९८ की है। मुझे भयानक रूप से पीलिया हो गया था। रोग लगातार बढ़ता ही जा रहा था। मैं इलाज के लिए ग्वालियर पहुँचा। वहाँ पर 'बिरला इन्स्टीटयूट ऑफ मेडिकल रिसर्च सेन्टर' में दिखाया।

अगले दिन सभी टैस्टों की रिपोर्ट आई तो पता चला कि मुझे 'हेपेटाइटिस-बी' था। डॉक्टर ने कहा कि यह तो एड्स से भी ज्यादा खतरनाक रोग है। वहाँ पर दस दिनों तक इलाज चलता रहा परन्तु रोग निरन्तर रौद्र रूप लेता जा रहा था।

उसी समय मेरा पुत्र एक बहुत बड़े ज्योतिषी एवं 'गायत्री-सिद्ध उपासक' पण्डितजी के पास गया। उन्होंने बताया कि : ''सभी ग्रह विपरीत हो गये हैं और बहुत जल्दी ही शरीर को पंचतत्त्वों में मिलाने की कोशिश कर रहे हैं। केवल 'गुरु' ही ऐसा है जो त्रिकोणीय रूप से सभी को नियंत्रित कर रहा है। फिर भी यदि ऐसा ही रहा तो इनका जीवन केवल ११ दिन का शेष है।'' यह सुनकर सभी लोग निराश होने लगे। जीवन की कोई आशा नहीं दिख रही थी।

उसी समय पूर्णिमा व्रतधारी मेरी बहन को प्रेरणा हुई कि मुझे साथ लेकर वह 'आश्रम' पहुँचे। परंतु अन्य लोग 'अपोलो हॉस्पिटल' या फिर 'ऑल इण्डिया इन्स्टीटयूट ऑफ मेडिकल रिसर्च' में ले चलने का आग्रह कर रहे थे। उस नाजुक समय में डॉक्टर ने कहा कि : ''आप लोग भले ही इन्हें किसी भी बड़े से बड़े हॉस्पिटल में ले जायें किन्तु जो इलाज यहाँ पर दिया जा रहा है, उससे अच्छा इलाज अभी तक उस रोग के लिए है ही नहीं।'' अन्त में सभी लोगों ने निश्चय किया कि अब जब सारे द्वार बन्द हो चुके हैं तो चलो 'गुरु-दरबार' चलते हैं।

सभी लोग ३१ अगस्त को रात्रि में १२.३० बजे सूरत आश्रम पहुँचे। वहाँ वैद्यराज ने सान्त्वना देकर इलाज तो प्रारम्भ कर दिया लेकिन यह भी कहा कि : ''बिना गुरुकृपा के कुछ नहीं हो सकता। आश्रम में गुरुदेव द्वारा शक्तिपात किये गये 'बड़दादा' की परिक्रमा करो।''

उसी समय मेरी बहन 'पूनम दर्शन' के लिए पुष्कर गयीं और गुरुदेव के मार्ग में झोली फैलाये मन-ही-मन मेरे लिए जीवनदान माँगती हुई खड़ी रही। गुरुदेव ने कृपादृष्टि डालते हुए प्रसाद रूप में एक टॉफी झोली में डाल दी। गुरुदेव ने मानों 'आरोग्य-संजीवनी' भेज दी थी मेरे लिए। मात्र तीन दिन बाद से ही इस भयंकर रोग में सुधार होने लगा। दवा का नियमपूर्वक सेवन किया। दो माह बाद पुनः सारी टैस्टिंग करवाई तो सभी देखकर आश्चर्यचकित हो उठे ! 'हेपेटाइटिस-बी' रोग निर्मूल हो गया था। सूरत से वह रिपोर्ट फैक्स द्वारा उन सभी प्रसिद्ध डॉक्टरों को भेजी। सभी आश्चर्यचकित थे कि ऐसा हो ही नहीं सकता। यह गुरुदेव की कृपा का ही फल था कि मैं इतनी जल्दी पूर्ण स्वस्थ हो गया।

हजारों के रोग मिटायें, और लाखों के शोक छुड़ायें।
अमृतमय प्रसाद जब देते, भक्त का रोग शोक हर लेते॥

आज मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ।

गुरुदेव के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम !

- किशन बिहारी राठौर

होमगंज, तहसील चौराहे के पास, औरैया (उ.प्र.).

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १०१वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया मार्च २००१ के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

* संस्था समाचार *

गुजरात में मेहसाना, पाटण, खेड़ा, सूरत और बिहार में आयी हुई बाढ़ हो, जबलपुर (म.प्र.) और लातूर (महाराष्ट्र) का भीषण भूकंप हो या गुजरात के जामनगर, द्वारिका, कंडला, मोरबी और उड़ीसा में आया हुआ विनाशकारी समुद्री तूफान हो, परम करुणामयहृदय संत श्री आसारामजी बापू की प्रेरणा से देश-विदेश में फैले आश्रमों और श्री योग वेदान्त सेवा समितियों के द्वारा तत्काल ही, युद्धस्तर पर सेवाकार्य किये जा रहे हैं।

इसी परम्परा की अगली कडी के रूप में, हाल ही में गुजरात में आये हुए भीषण भूकंप की परिस्थिति में पीड़ित जनता की सहायता के लिए संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद द्वारा सभी जरूरी राहत कार्य युद्ध-स्तर पर किये जा रहे हैं।

भूकंप के दिन से आज तक संत श्री आसारामजी आश्रम की ओर से भूकंप-पीड़ितों को एयरफोर्स के १६ हेलिकॉप्टरों एवं लगभग १२२ ट्रक जितनी सामग्री भेजी जा चुकी है, जिसमें मुख्यतः कई टन चावल, आटा, गेहूँ, पीने के पानी के एक लाख पाउच व १५० केरबे, मृतकों के अंतिम संस्कार के लिए ८० टन लकड़ी, लगभग ५००० टैन्ट, ९००० कंबल, ४ ट्रक ऊनी व अन्य वस्त्र सामग्री, ३ ट्रक औषधियाँ हैं। लगभग २५०० स्वयंसेवकों तथा आयुर्वेद, होम्योपैथी एवं ऐलोपैथी के ७५ विशेषज्ञों व अनुभवी चिकित्सकों के दल के साथ आश्रम का सचल चिकित्सालय आज भी पूरे भूकंप विस्तार में सेवारत है।

इसके अतिरिक्त भूकंप में अनाथ बने हुए बालकों की स्थिति को देखते हुए पूज्य बापूजी ने अनाथ बालकों को दत्तक लेने हेतु पूनम व्रतधारियों को संकेत किया। प्रतिमाह पूनम के दिन पूज्यश्री का दर्शन किये बिना जल भी ग्रहण नहीं करते ऐसे २०० पूनम व्रतधारियों ने अमदावाद में और ८०० व्रतधारियों ने दिल्ली में पूज्य गुरुदेव का संकेत मिलते ही अनाथ बालकों को दत्तक लेने की तैयारी दर्शायी।

भुज-कच्छ के क्रूर भूकंप में जितने भी बालक अनाथ हुए हैं उन सबको दत्तक लेंगे संत श्री आसारामजी आश्रम और उनके पूनम व्रतधारी साधक। संयम, व्रत और साधना से सुसज्ज पूनमव्रतधारी हजारों भक्तों ने अनाथ आश्रम की नाईं नहीं अपितु करोड़पति भी देखते रह जायेंगे ऐसे दिव्य संस्कारों एवं पोषण से उन बालकों को सुसंस्कृत करने का वचन दिया है। अकबर के पास तो नौ ही रत्न थे लेकिन पूज्य बापू के पास तो अनेक रत्न हैं।

सेवाकार्यों की कड़ी के रूप में दिनांक : २ मार्च को कांकरिया, अमदावाद में, भूकंप में दिवंगत सभी आत्माओं की सद्गति, कल्याण के लिए **विष्णुयाग, विष्णुपूजन, गीता-भागवत पारायण एवं सामूहिक जपयज्ञ** का आयोजन किया गया, जिसमें बड़ी संख्या में मृतकों के स्वजन पूरे गुजरात में से आये। यज्ञ में मृतात्माओं की सद्गति हेतु शांति-प्रार्थना और जपयज्ञ किया गया। इस यज्ञ में पूज्य श्री नारायण साँईं भी मध्य प्रदेश से पधारे। उन्होंने मृतकों की सद्गति हेतु शांति-प्रार्थना की और उनके स्वजनों को शांत्वना-सत्संग दिया। इस यज्ञ में गुजरात राज्य के राज्यपाल महामहिम श्री सुंदरसिंह भंडारी भी उपस्थित रहे थे।

'भक्ति जागृति प्रचार मण्डल-सूरत' के १०० से भी ज्यादा सेवाधारी भूकंपग्रस्त विस्तार में गये। वहाँ अब तक १३२ गाँवों में जाकर भक्ति-जागृति की सेवा की। इसके साथ-साथ हर गाँव में आश्रम की साध्वियों के सत्संग का लाभ भी वहाँ की जनता को मिला। आश्रम का सचल चिकित्सालय भी लोगों की सेवा के लिए इस यात्रा में शामिल है। इस सचल चिकित्सालय में हर रोज ३०० से भी अधिक मरीजों की निःशुल्क चिकित्सा सेवा की जाती है।

लोगों के शरीर की व्याधियाँ सचल चिकित्सालय द्वारा दूर की जा रही हैं और मन की व्याधियाँ आश्रम की साधिका बहनों के सत्संग-कीर्तन द्वारा दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

लोगों की शारीरिक सेवा तो कई लोग कर लेते हैं परन्तु मानसिक शोक-संताप हरने की सेवा तो सच्चे ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष और उनके सेवक-साधक ही करते हैं।

दक्षिण दिल्ली : ८ से ११ फरवरी। चार दिवसीय दिव्य सत्संग समारोह व पूर्णिमा दर्शनोत्सव संपन्न हुआ। पुष्पविहार में आयोजित इस कार्यक्रम में देश के विभिन्न भागों से बड़ी संख्या में आये हुए भक्तजन पूज्यश्री की आत्मस्पर्शी अमृतवाणी से लाभान्वित हुए। राजधानी के व्यस्त जीवन में भी सत्संग-प्रेमियों का विशाल समुदाय सत्संग-प्रांगण में उमड़ पड़ा था। चार दिनों तक महानगरी का यह क्षेत्र आध्यात्मिकता का केन्द्रबिन्दु रहा।

तीन महीने के एकान्त-मौन के बाद का यह पहला सत्संग राजधानी में विलक्षण तेज-ओज व आत्मिक अनुभव की रसधार से भरपूर रहा। सत्संग का लाभ लेनेवाले भक्तों की भीड़ भी भरपूर रही।

चंडीगढ : १७ और १८ फरवरी। ग्राम सूंक स्थित नवनिर्मित आश्रम में दो दिवसीय सत्संग-प्रवचन संपन्न हुआ।

१९ फरवरी को हरियाणा के राज्यपाल महामहिम श्री बाबू परमानंदजी सपरिवार पूज्यश्री के दर्शन व आशीर्वाद प्राप्त करने आश्रम आये। करीब एक घंटा विभिन्न विषयों पर वार्तालाप हुआ। उनकी जिज्ञासा, नम्रता व संतों के प्रति दृढ़ श्रद्धा-भक्ति उनके जीवन में सच्चे सुख व शांति की प्यास का परिचय दे रही थी।

लुधियाना : २१ से २५ फरवरी। संत श्री आसारामजी आश्रम, साहनेवाल, लुधियाना में पाँच दिवसीय शिवरात्रि महोत्सव संपन्न हुआ। पूज्यश्री ने बताया कि : **''शिवरात्रि, होली, जन्माष्टमी और दिवाली - वर्ष की इन चार महारात्रियों में ग्रह-नक्षत्रों का विशेष लाभ लेने के लिए जप, जागरण और ध्यान करना चाहिए। इससे हमारे पाँचों शरीरों के दोष क्षीण होते हैं। दिव्याणु विकसित होते हैं जो शरीर के स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन और बौद्धिक विकास में सहायक होते हैं।''** शिवरात्रि को पूज्यपाद बापू भक्तों के बीच उपस्थित रहे और उन्होंने जप-ध्यान करवाया। ध्यान की गहराइयों में प्रवेश पाकर पुण्यात्मा धन्य हुए। जप-ध्यान का विशेष लाभ सभी ने उठाया।

२६ से २८ फरवरी जिंद व १ से ४ मार्च रोहतक के सत्संग में उमड़ेगा सत्संगियों का सैलाब।

पूज्य बापू के कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	स्थान	संपर्क फोन
८ से ११ मार्च २००१	सूरत	ध्यान योग शिविर सत्संग पू. नारायण साँईं द्वारा	संत श्री आसारामजी आश्रम, जहाँगीरपुरा, सूरत।	(०२६१) ७७२२०१, ७७२२०२.

पूर्णिमा दर्शन : ९ मार्च २००१ सूरत आश्रम में।

गुजरात के भूकंप में दिवंगत आत्माओं की सद्गति के लिए, पूज्य बापूजी की प्रेरणा से अमदावाद में आयोजित विष्णुयाग, विष्णुपूजन तथा गीता भागवत पारायण यज्ञ करते हुए गुजरात के राज्यपाल महामहिम श्री सुंदरसिंह भंडारी के साथ श्रद्धेय श्री नारायण साँई।

भूकंप से भयग्रस्त कच्छ–भुज (गुज.) के विभिन्नं क्षेत्रों में भक्ति जागृति यात्रा के द्वारा वातावरण में शांति, निर्भयता और आध्यात्मिकता का संचार करते हुए पूज्य बापूजी के साधक भक्त।

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED. NO. GAMC/1132/2001. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2001 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL 11513/2001 WITHOUT PRE PAYMENT LIC. NO. U(C) 232/2001 POSTING FROM DELHI 10, 11 OF EVERY MONTH.